वर्ष ३ | ओ३म् भक्ति ओ३म् | संख्या ६

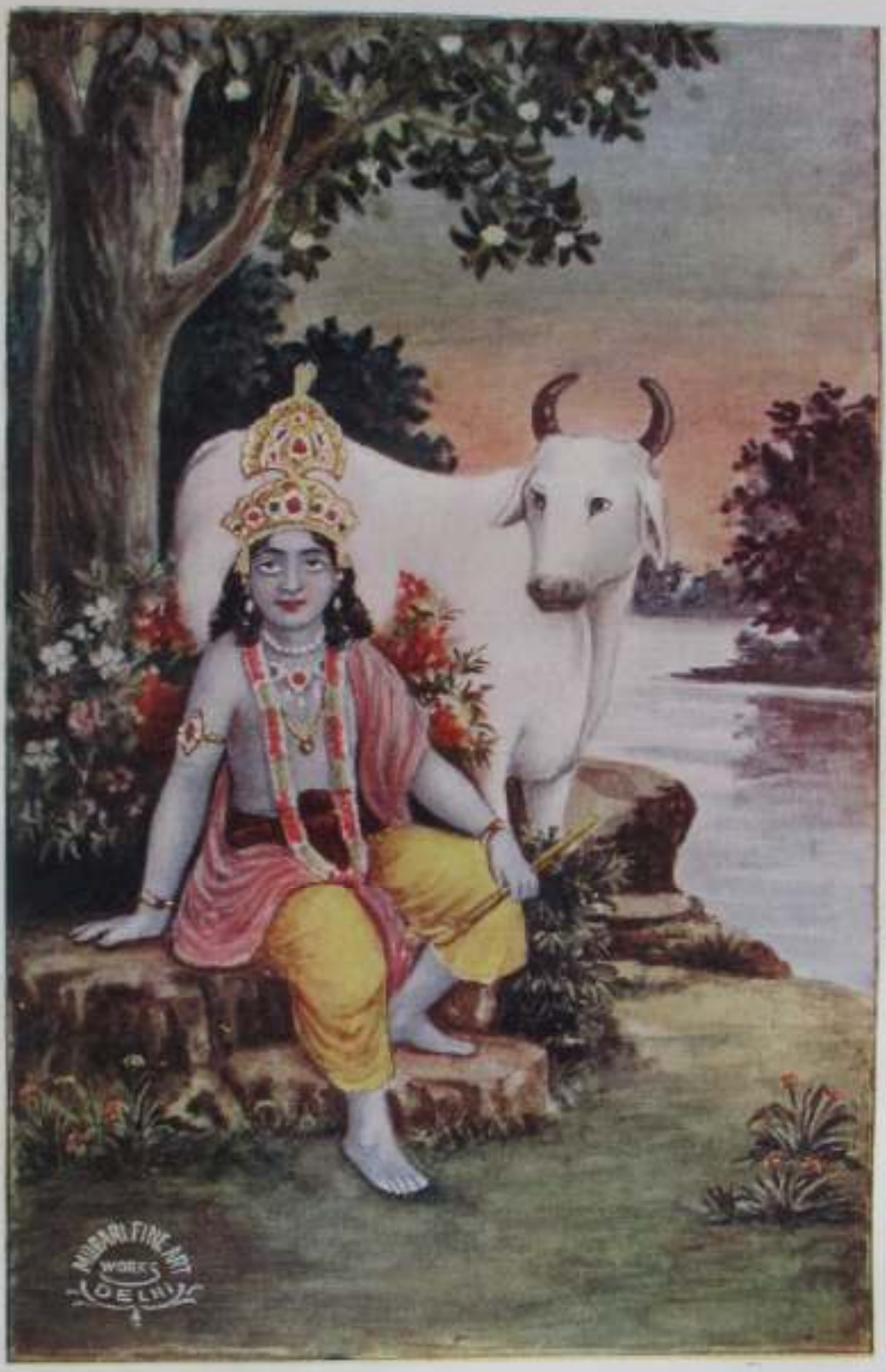

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणम् व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द
फाल्गुण, १९८५

इस अङ्क का मूल्य ।)

भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षण और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) रुपया देंगे वह पत्रके संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, करना, न घटाना, व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और व प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए।

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिये।

विषय सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ
१. भगवद्वचन		२३३
२. भक्तों के चरित्र	[सम्पादक	२३५
३. भक्ति के रास्ते क्या हैं	[पं० धारीराम शर्मा दिल्ली	२३८
४. महात्माओं के वाक्य		२४०
५. भगवद्भक्ति	[ले० श्रीभोले बाबा अनूपशहर	२४१
६. मिलन	[ले० श्री० हरिकृष्ण दास जी गुप्ता दिल्ली	२४८
७. मोहन के प्रति (कविता)	ले० श्री श्रीराम "राम"	२५१
८. कच की गुरु भक्ति	[भूमानन्द ब्रह्मचारी	२५१
९. कर सकते हो पार तुम्हीं (कविता)	[ले० श्रीमुरारी शर्मा "अभय"	२५४
१०. अमूल्य पदार्थ	[श्री जयदयालजी डालमियां	२५४
११. दान	[श्रीमती सूरज देवी	२५६
१२. परोक्ष गोवध के दायी कौन २ हैं	[ले० श्री पं० गंगाप्रसाद जी अग्निहोत्री	२५९
१३. देखा (कविता)	[ले० श्रीमदनमोहन सिंहल	२६१
१४. वसन्त		२६१
१५. भजन		२६३

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" श्रीभगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी।

भक्ति के संरक्षक

राय बहादुर ला० सेवकराम जी एम. एल. सी, बार-ऐट-ला लाहौर	१२५)
भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी	१११)
ले० क० सरदार रघुबीरसिंह जी सांधोवालिया राजा सांसी, अमृतसर	१११)
राय बहादुर ला० बनारसीदास जी रईस, मिल ओनर अम्बाला	१०१)
श्रीमान् भाई नारायण सिंह जी हीरामण्डी लाहौर	१०१)
राव बहादुर, कप्तान राव बलवीर सिंह जी ओ. बी. ई. रामपुरा	५१)
सेठ अर्जुनदास जी भटिण्डा	५१)
राव श्रीराम जी रईस नांगल	५१)
म० शोभाराम जी डूंगरवास	२५)
चौ० धर्मसिंह जी मलिक, तहसीलदार रेवाड़ी	,,
राव निहालसिंह जी सूबेदार पाल्हावास	,,
बा० स्वयम्बरदास जी बी० ए० इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्ज पटना	,,
श्रीमती रानी निहालकोर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलवीरसिंह जी	,,
सेठ बनवारी लाल जी लोहिया चावड़ी बाजार दिल्ली	,,
बक्शी चाननशाह एम. ए. एल. एल. बी. इन्कम्टैक्स आफीसर जालंधर	,,
पं० मूलचन्द जी शर्मा (डहीना निवासी) अकाउण्टैन्ट हेड आफिस जयपुर	,,
ला० नूनकरणदास जी अग्रवाल भिवानी।	,,
राजा रूपसिंह जी रईस जिहाजगढ़।	,,
पं० गोपीनाथ जी [बिहाली निवासी] मालिक फार्म काशीनाथ बरफूमल गली परांवठा दिल्ली	,,
श्रीमती खुशालदेवी धर्मपत्नी चौ० नवलसिंह जी कोसली।	,,
सेठ शिम्भुदयाल जी बीकानेर	,,
चौ० रामजीलाल जी धवाना, हांसी	,,
चौ० चन्दनसिंह जी कप्तान दतिया राज्य	,,
ठाकुर उमरावसिंह जी रईस नान्धा	,,
ला० दुर्गाप्रसाद जी भार्गव कुतबपुर	,,
राय बहादुर सरदार शोभासिंह जी आनरेरी मजिस्ट्रेट नई दिल्ली	,,
लक्ष्मी देवी खोसल धर्मपत्नी ला० बद्रीनाथ जी बी. ए. श्रीनगर	,,
बाई बदामो देवी पुत्री ला० गनेशीलाल चर्खीदादरी	,,
श्रीमती भक्काणीदेवी धर्मपत्नी भक्त नन्दकिशोर जी चर्खीदादरी	,,
श्रीमती गोदावरीदेवी भगनी ला० प्रभुदयाल जी	,,
श्री० गणपतिदेवी धर्मपत्नी ला० गंगाप्रसाद जी दादरीवाले, साहबगंज	,,
सेठ उमरावसिंह जी डालमियां चिड़ावा	२५)
मक्खी चमड़ूमल बलीराम जी भटण्डा	५१)
सर आपा राव सातोले साहिब सी० एस० ई० के० बी० ई० रेवेन्यू मेम्बर गवालियर	५१)
राव गजराजसिंह जी बी० ए० एल० एल० बी० गुड़गावा	५१)
सेठ नागरमल जी सेखावतिया आनरेरी मजिस्ट्रेट मिचनाबाद	२५)
ऐस० जे० राव पंवार होम मेम्बर गवालियर स्टेट ,,	२५)
	,,

राय बहादुर सरदार बसावासिंह जी नई दिल्ली २५)
ला० रामकुंवार जी सीनयर सब जज जालंधर २५)
सरदार भगतसिंह एडवोकेट जालंधर २५)
पी० एन० कोल बैरिस्टर दिवान भूतपूर्व देवास स्टेट लाहोर २५)
चौ० सुन्दरलाल नन्दलाल रईसान कमालिया जि० मिन्टगुमरी २५)
सूबेदार जगरामसिंह जी कोसली २५)

सहायक

चौ० हुकमसिंह जी निखरी
बा० वैकुण्ठनाथ जी दिल्ली ११)
पं० जगन्नाथ जी रेवाड़ी ११)
चौ० शिवप्रसाद सेक्रेटरी अहीर स्कूल रेवाड़ी ११)
रामप्रसाद जी माड़सा ५)
चौ० रामजीलाल जी कन्स्टेबल नांगलोई ५)
भक्त बनारसीदास जी दिल्ली ५)
महाशय शादीराम जी मस्तापुर, रेवाड़ी। ५)
श्रीमती सूरज देवी धर्मपत्नी चौ० जोरावरसिंह जी एडीशनल जज अलीगढ। ५)
चौ० शिवनारायणसिंह जी कोतवाल, सीकर राजपूताना ५)
श्रीमान् पं० जयराम जी शर्मा 'सनातन' इलाहबाद बैंक देहली। ५)
ला० बनारसी दास जी, अकाउण्टेंट हजूरी, संगरूर। ५)
महन्त प्रकाशानन्द जी मन्दिर चरणदासियान बल्लीमारान दिल्ली ५)
मि० एल. के. मिसरा इंस्पेक्टर, पोस्ट आफिस जयपुर ५)
राय बहादुर लेखनारायण सिंह जी बाढ, पटना ५)
डाक्टर कवलकिशोर सिंह जी कलकत्ता ५)
राय साहब बांकेविहारीलाल जी बी० ए० तहसीलदार चिड़ावा ५)
सेठ मेलाराम जी अग्रवाल भिवानी ५)
ला० रामचन्द्र जी वैश्य " ५)
राव घीसाराम जी गढ़ीबोलनी ११)
बा० शिवरामसिंह जी " ७)
जमादार दीपचन्द जी " ५)
चौ० इन्द्रसिंह जी सिरहोल १०)
ला० ओंकारमल जी कानपुर ५)
चौ० गणपतसिंह जी यादव पटीकड़ा परगना नारनौल ११)
चौ० मनोहरसिंह जी " पाल्हावास, रेवाड़ी ११)
ला० छोटेलाल घासीराम जी आर्यन मर्चेण्ट चावड़ीबाजार, दिल्ली ११)
चौ० दौलतराम जी पटवारी नाहरी, सूबा दिल्ली ५)
भक्त हरीचन्द जी प्रेमहाउस, " "
चौ० धर्मसिंह जी कालूवास, तहसील रेवाड़ी "

प० मथुराप्रसाद ग्राम जमालपुर पो० कासन, गुड़गावां
श्री० दिलीपसिंह जी, कैथल मंडी, करनाल
ला० सरदारीलाल जी क्लाथ मार्केट दिल्ली
चौ० मूलचन्दजी गुरावड़ा जि० गुड़गावां
बा० जगन्नाथ यादव सदर बाजार लखनऊ
ला० अमीचन्द नरसिंहदास भिवानी
सुमित्रादेवी ठिकाना ल० प्रेमशंकरजी पान का वरीवा जैपुर

भक्ति

का

भगवद्भक्तांक

पृष्ठ संख्या १०४ कई रंगीन तथा सादे चित्रों से सुशोभित मूल्य ॥=)

मंगाने वालों को शीघ्रता करनी चाहिये। थोड़ी ही प्रतियां शेष रह गई हैं। फिर पीछे पछताना पड़ेगा।

मैनेजर

भक्ति कार्यालय रेवाड़ी

Printed at the Maharathi Press, Delhi.

ब्लाक 'महारथी' दिल्ली की कृपा से प्राप्त।

भगवान राम

'सकल सुमंगल दायक, रघुनायक गुण गान।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव, सिंधु बिना जलयान॥

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ३ | भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, फाल्गुन पूर्णिमा सं० १९८५। | अङ्क ६

भगवद्वचन।

तं त्वा गोपवनो गिरा जनिष्ठदग्ने अंगिरः। स पावक श्रुधी हवम्॥ १॥

हे अग्निदेव! उन आपको गोपवन स्तुति से उत्पन्न करता है। हे सर्वत्र गमन करने वाले शोधक अग्निदेव! आह्वान को सुनो॥ १॥

उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम्॥ २॥

सूर्य की किरणें सकल भुवनों को देखने को प्रसिद्ध प्राणियों के ज्ञाता दीप्तिमान् सूर्य को ऊपर को उठाती हैं॥ २॥

शं नो देवीरभिष्टये शं नो भवन्तु पीतये। शं योरभिस्रवन्तु नः॥ ३॥

हमको सुख हो, दिव्य जल हमारे जल के अंग बनें, और हमारे पीने के लिये सुख रूप और शान्तिदायक हो तथा हमारे ऊपर अमृत रूप से टपकें॥ ३॥

पाहि नो अग्न एकया पाह्यु३त द्वितीयया। पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥ ४ ॥

हे अग्निदेव ! हमारी एक ऋचा रूप वाणी से और दूसरी ऋचा से रक्षा करो। हे बलोंके स्वामिन् अग्ने तीन स्तुतियों से रक्षा करो हे अग्ने ! चार स्तुतियों से रक्षा करो ॥ ४ ॥

नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते। दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः ॥ ५ ॥

हे अग्निदेव ! प्रकाशरूप तुमको यजमान के अर्थ प्रजापति स्थापित करता हुवा यज्ञ के निमित्त से उत्पन्न हुवा २ और हवियों से तृप्त हुवा २ कण्व के विषय दीप्त हुए हो, जिसको मनुष्य नमस्कार करते हैं॥

शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद् विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि। विश्वा हि माया अवसि स्वधावन् भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥ ६ ॥

हे पूषन् ! तुम्हारा एक रूप निर्मल है जो दिन होने का कारण है, और दूसरा रूप यजनीय है प्रकाशक नहीं, जो रात्रि होने का कारण है, इसी कारण विषम रूप दिन रात होते हैं। तुम आदित्यवत् प्रकाशक हो। हे अन्न वाले पूषन् ! आप सकल प्रज्ञाओं की रक्षा करते हो। इसलिये आपका कल्याण रूप दान हमारे विषय में हो ॥ ६ ॥

सोमं राजानं वरुणमग्निमन्वारभामहे। आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥ ७ ॥

राजा सोम को, वरुण को, अग्नि को, अदिति के पुत्र विष्णु को, सूर्य को, ब्रह्माको और बृहस्पति को रक्षार्थ आह्वान करते हैं ॥ ७ ॥

राये अग्ने महे त्वा दानाय समिधीमहि। ईडिष्वा हि महे वृषन्द्यावा होत्राय पृथिवी ॥ ८ ॥

हे अग्निदेव ! तुम्हें बहुत से धन दान के लिये भली प्रकार से प्रदीप्त करते हैं। हे वरदाता ! बड़े हवन के लिये द्यावा पृथिवी की स्तुति करते हैं ॥ ८ ॥

अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो। अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ॥९॥

बल के पुत्र हे अग्ने ! अनेकों गौवों से युक्त आप अन्न के ईश्वर हो। इस कारण प्राणी मात्र के अन्तर्यामी अग्ने ! हमें बहुत सा अन्न दीजिये ॥ ९ ॥

उतस्या नो दिवा मतिरदितिरूत्यागमत्। सा शन्ताता मयस्करदप स्रिधः ॥१०

स्तुति करने योग्य अदिति रक्षा सहित दिन में हमें प्राप्त हो और आकर शान्ति करने वाले सुख को वह अदिति दे और शत्रुओं को दूर करे ॥ १० ॥

भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः । भद्रा उत प्रशस्तयः ॥

हवियों से तृप्त किया हुवा अग्नि हमको कल्याण रूप हो, हे सुभग ! हमें कल्याण रूप दान प्राप्त हो, कल्याणकारी यज्ञ प्राप्त हों और कल्याण रूप स्तुतियें प्राप्त हों ॥ ११ ॥

भक्तों के चरित्र

चन्द्रहास

जो चन्द्रहास का नाम परम भागवतों में गिना जाता है। यह राजा युधिष्ठिर के समकालीन हुए हैं। महाभारत के अश्वमेध पर्व में इनका वृत्तान्त आता है। कथा करने वाले और धार्मिक इतिहास गाने वाले प्रचारक, राजा चन्द्रहास की गाथाएं बहुत सुनाया करते हैं। चन्द्रहास जी केरल देश के राजा मेधावी के पुत्र थे। उनके पांवमें छ अंगुलियां थीं जो सामुद्रिक विद्या के ख्याल से अशुभ मानी जाती हैं, इसका परिणाम यह हुआ कि इनके जन्म लेते ही मेधावी राजा पर किसी अन्य देश के राजा ने चढ़ाई करदी। इस युद्ध में मेधावी मारा गया और इसकी रानी सती होगई। धाय बड़ी नेक थी बालक को लेकर कुन्तलपुर चली आई। यहां के राजा के मंत्री का नाम धृष्टबुद्धि था यह उसके घर आकर रहने लगे। धाय शत्रुओं के भय से चन्द्रहास को अपना ही पुत्र बताया करती थी।

चन्द्रहास की अवस्था ५ वर्ष की थी उस समय नारद जी भ्रमण करते २ उस नगर में आए और चन्द्रहास को सालिग्राम की मूर्ति देकर उपदेश किया कि इसको भोग लगा कर भोजन किया करना और अमुक मन्त्रका जाप किया करना। चन्द्रहास सरल हृदय और सत्यग्राही थे उपदेश को हृदयङ्गम करके वैसा ही आचरण करने लगे। कुछ दिन पीछे वह धाय भी मरगई और चन्द्रहासजी अनाथकी भांति उस मंत्री के घर में रहने लगे। एक दिन उस मन्त्री के घर ब्राह्मणों का भोजन था, उसने उन से पूछा कि 'मेरी कन्या विषया का पति कौन होगा"। उन्होंने चन्द्रहास की तरफ इशारा करके कहा कि "यह बालक विषया का पति होगा"। इस बातको सुन कर मंत्री महा दुःखी हुआ कि तेरी कन्या एक दासी पुत्र से व्याही जावेगी। उसने मन में विचार किया कि इस बालक को मरवा देने से इस संकट से पीछा छूट सकता है। उसने वधिकों को बुला कर आज्ञा दी कि इस लड़के को जङ्गल में लेजा कर इसको वध करके मुझको समाचार देना। वधिकगण मन्त्री की आज्ञानुसार चन्द्रहास को जङ्गल में लेगए

वहां जाकर उसको मंत्री की आज्ञा सुनाकर कहा कि 'हम तुझे मारने के लिए लाये हैं, अब मृत्यु के लिए तैयार हो जा, इतना कह कर उन्होंने तलवार खींची। चन्द्रहास ने कहा 'अच्छा मैं तैयार हूं परन्तु मुझे सालिग्राम जी का पूजन कर लेने दो और जब मेरा ध्यान ठीक उनके चरणों में लग जावे तो मेरा शिर काट देना'। इतना कहकर वह भगवान् के ध्यान में लग गए। परम कृपालु ईश्वर ने वधिकों के हृदय में दया उत्पन्न कर दी। वह सोचने लगे कि इस बालक को जोकि परमात्मा का भक्त है मारने से बड़ा पाप लगेगा इसलिए इसके पांवकी एक उंगली काट लेते हैं। वह वज़ीर को दिखा देंगे और इस को जंगल में छोड़ देते हैं, यह जंगली जानवरों द्वारा आप ही खाया जावेगा और हम पाप से बच जावेंगे। वधिकों ने उंगली काट कर मंत्री को निशानी पेश करदी और चन्द्रहास जी तीन दिन तक बराबर भगवान् के ध्यान में मग्न रहे। धूप के समय पक्षी अपने पंखों से उनके ऊपर छाया करते थे और रातमें सब जानवर उनसे प्रेम करते थे। सत्य है।

जाको राखे साईयां मार न सक्के कोय
बाल न बांका कर सके जो जग बैरी होय

संयोग वश कलिन्द चन्दनावती का राजा शिकार खेलता हुआ वहां आ निकला। वह इस दृश्य को देखकर बड़ा दुःखी हुआ और चन्द्रहास जी को अपने घर लेगया। उसको कोई सन्तान न थी इसलिये इनको ही अपना पुत्र मान कर पढ़ाने लिखाने लगा और इनको ही राज्य देने का निश्चय कर लिया। चन्द्रहास जी थोड़े दिन में योग्य होगए और राज का काम देखने लगे। कलिन्द कुन्तलपुर के राजा के आधीन था। एक बार कर का रुपया भेजने में देरी होगई, इससे धृष्टबुद्धि सेना लेकर चढ़ आया। राजा ने उसका स्वागत किया और मिलकर रुपया न भेजने का कारण कह सुनाया। राजा चन्द्रहास को भी अपने साथ लेगया और राज का काम उनके सुपुर्द कर देने की बात सुना कर कहा कि 'आप चन्दनावती का राजा इनको ही समझो, यही युवराज हैं और काम काज भी सब यही करते हैं।

धृष्टबुद्धि चन्द्रहास जी को पहचान गया, उसके हृदय में द्वेष की अग्नि भड़क उठी। वह बोला "कुन्तलपुर की आज्ञा के बिना किसी को अपना युवराज बनाने का तुमको अधिकार नहीं है, तुमने यह बड़ी भूल की है परन्तु अब मैं तुमको सलाह देता हूं कि इनको कुन्तलपुर भेज दिया जावे ताकि महाराज इनको देखलें और स्वीकारी दे दें। मैं अपने पुत्रको पत्र लिख दूंगा वह इनको दरबार में पेश कर देगा इस तरह सब काम ठीक हो जावेगा" कलिन्द ने इस बात को स्वीकार कर लिया और चन्द्रहास जी को कुन्तलपुर भेजने की आज्ञा दे दी। मंत्री चन्द्रहास जी को मारना चाहता था उसने अपने पुत्र मदन के नाम पत्र लिख कर, लिफाफे में बन्द करके चन्द्रहास जी को दे दिया और कहा कि पत्र मदन को दे देना। पत्र में लिखा था कि चन्द्रहास को विष दे देना।

चन्द्रहास जी पत्र लेकर कुन्तलपुर पहुंचे वहां मंत्री के बाग में गए। उस समय वहां कोई न था और वह थके मान्दे थे इसलिए घोड़ा बान्ध कर एक स्थान में सो रहे। मंत्री की एक कन्या थी उसका नाम विषया था वह सयानी हो गई थी। वह

भी उसी समय बाग में सैर करने आई थी। उसने चन्द्रहास जी को सोते हुए देखा। चन्द्रहास जी राजा के पुत्र थे, फिर बड़े सदाचारी और ब्रह्मचारी थे। विषया इनके सुन्दर रूपको देख कर मोहित हो गई। जानने का प्रयत्न किया कि यह कौन है? उसने इनकी जेब को देखा उसमें एक पत्र मिला उसको खोल कर देखा। पत्र में लिखा था कि इसको विष दे देना। यह समझ गई कि यह मेरे पिता का भेजा हुआ है और वह उसकी जान लेना चाहते हैं। उसमें लिखा था कि "चन्द्रहास को विष दे देना"। इसने पत्र में विष को विषया बना दिया और पत्र को जेब में डाल कर घर चली गई। चन्द्रहास जी कुछ देर पीछे उठे और मदन से मिल कर पत्र उसको दे दिया। वह चन्द्रहास जी को देख कर प्रसन्न हुआ कि मेरी बहन एक सुन्दर राज कुमार से ब्याही जावेगी। उसने बड़ी शीघ्र तय्यारी करके विषया का विवाह उससे कर दिया। चन्द्रहास जी कुछ दिन वहां ही रहे।

कुछ दिन पीछे धृष्टबुद्धि भी कुन्तलपुर आगया। यहां की लीला देख कर उसके शरीर में अग्नि प्रज्वलित हो गई। क्रोध करके मदन से पूछा ऐसा क्यों हुआ? आश्चर्य तो बहुत हुआ परन्तु क्या करता लाचार था अब वह कुछ और दुष्टता के उपाय सोचने लगा। अन्त में उसने निश्चय करके चन्द्रहास जी से कहा कि हमारे कुल की रीति अनुसार जिसका विवाह होता है उसको दुर्गा का पूजन करना होता है। अतएव आप दुर्गा पूजन की तय्यारी करें। उधर वधिकों को बुला कर आज्ञा दी कि दुर्गा जी के मन्दिर में जो आदमी दुर्गा पूजा के लिये आवे तुम तलवार से उसका वध कर देना। धृष्टबुद्धि को कन्या का विधवा हो जाना स्वीकार था। परन्तु चन्द्रहास जी को जीवित देखना नहीं चाहता था। यहां भी परमात्मा की दया ने विचित्र दृश्य दिखलाया।

चन्द्रहास जी जब कुन्तलपुर के राजा से मिले, तो वह उन्हें देख कर बहुत ही प्रसन्न हो गया था। घर कोई लड़का न था। केवल एक कन्या थी, उसके जी में आया कि यह लड़की चन्द्रहास को दे कर उसी को अपने राज पाठ का मालिक बनाऊं।

मदन पास बैठा हुवा था, राजा ने कहा तुम चन्द्रहास को बुला लाओ। जब यह घर पर आया तो इस ने सुना की चन्द्रहास जी दुर्गा देवी की पूजा करने गये हैं, यह दौड़ा और राह में उन से मिल कर कहा कि राजा तुम से बहुत प्रसन्न है और तुम्हें बुला रहे हैं तुम इसी समय राज दरबार में जाओ और मैं तुम्हारे बदले पूजा करने जाता हूं।

इन्होंने मदन की मान ली जब ये दरबार में पहुंचे तो इधर तो राजा ने राज तिलक दे कर अपनी गद्दी का मालिक बनाया और लड़की का हाथ उनके हाथ में दिया, उधर जल्लाद ताक में लग रहे थे उन्होंने मदन को चन्द्रहास समझ कर मार डाला एक ही समय में दोनों घटनायें हुईं धृष्टबुद्धि को कुछ देर पीछे पता लगा कि मदन तो मारा गया और चन्द्रहास जी राजा बनाये गये। उसकी आखों के सामने अंधेरा छा गया, मन्दिर में जाकर देखा कि मृतक शरीर पड़ा हुवा था और श्वास बन्द हो गई थी, क्या करता रोने चिल्लाने लगा, सारी नगरी में बात फैल गई कि धृष्टबुद्धि किसको मारना चाहता था और कौन मारा गया। जब चन्द्रहास जी ने इस

घटना का हाल सुना तो दौड़े हुये वहां पहुंचे धृष्टबुद्धि को देखा बहुत विलाप कर रहा था, उनको दया आई और मदन के लिये दुर्गाजी से प्रार्थना की थोड़ी देर में मदन ने आखें खोलीं वह खड़ा हो गया, धृष्टबुद्धि अपने किये पर बहुत पछताया और चन्द्रहास जी से क्षमा प्रार्थना की। अब चन्द्रहास जी चन्दनावती की गद्दी के भी मालिक बने, चन्द्रहास जी के राज्य में भक्ति भाव का बड़ा प्रचार हुवा। जब युधिष्ठिर जी अश्वमेध यज्ञ करने लगे अर्जुन यज्ञ के घोड़े के साथ कुन्तलपुर में आया चन्द्रहास जी भक्त होने के अतिरिक्त शूरवीर भी थे। उन्होंने अपनी स्वतन्त्रता को खोना उचित नहीं समझा इसलिये यज्ञ के घोड़े को पकड़ लिया, अर्जुन और चन्द्रहास जी में लड़ाई होने ही को थी कि भगवान कृष्ण ने अर्जुन को समझाया कि चन्द्रहास जी के हृदय में मेरी मूर्ति विराजमान है तुम उनसे लड़ने का प्रयत्न मत करो इस प्रकार समझा बुझा कर दोनों को अलग किया और उनको अश्वमेध के उत्सव के लिये निमन्त्रण दिया।

भक्ति के रास्ते क्या हैं?

[ले० श्री० पं० घासीराम शर्म्मा दिल्ली]

किसी ठीक रास्ते के जाने बिना किसी स्थान पर पहुंचना कठिन है। चाहे वह स्थान पास हो या दूर। इसी प्रकार परमात्मा की प्राप्ति के लिये भक्ति मार्ग का जानना जरूरी है। बिना जाने या सिखाये भक्त बन ही नहीं सक्ता है। चाहे कोई मनुष्य कितना ही परिश्रम और पठन करे। किसी कवि का कथन है कि:-

हजारों मर गये इस जुस्तजू में।
पर न पाया भेद उसका किसीने॥

भक्ति का शब्दार्थ प्रेम है। भक्ति शब्द विशेष करके परमात्मा के या ईश्वर आदि के साथ ही व्यवहार होता है, लेकिन इसका प्रयोग दूसरे शब्दों के साथ भी होता है जैसे, राजभक्ति, देशभक्ति आदि। बहुधा महात्म्य का मिश्रण होने से भक्ति का संचार होता है। सारे महत्वों के छः भेद माने गये हैं। ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, पराक्रम, यश, और लक्ष्मी। मनुष्यों में इन गुणों में से दो एक ही मामूली तरह से मिलते हैं लेकिन परमात्मा में, यह समस्त गुण प्रचुर परिमाण से विद्यमान हैं इसलिये ईश्वर भक्त राज भक्त और देश भक्तों से विशेष हैं।

समस्त प्रकार की भक्ति के नव भेद किये गये हैं:-

(१) पहिला स्थान श्रवण भक्ति को दिया गया है क्योंकि बिना सुने कीर्तन और स्मरण नहीं हो सक्ता है श्रवण का अर्थ सुनना है।

(२) कीर्तन भक्ति-ईश्वर की लीला आदि का गान तथा पद्य में कहते रहना कीर्तन भक्ति है।

(३) स्मरण भक्ति- उसे कहते हैं जिस में ईश्वरीय लीलाओं को अपने मन में, और तरफ से चित को हटा कर, सोचते रहना।

(४) पाद सेवन भक्ति पहले कही हुई तीनों प्रकार की भक्ति से कुछ ईश्वर में जब श्रद्धा या प्रेम हो जाता है तब मनुष्य की रुचि होती है कि मैं ईश्वर की मूर्ति लेकर उसका पाद सेवन या मूर्ति परिचर्या करूं।

(५) अर्चन भक्ति- श्रद्धा से मूर्तियों का उपचार करना, जैसे- स्नान कराना वस्त्र पहिराना और भोग और शयन आदि कराने का नाम अर्चन भक्ति है।

(६) वन्दन भक्ति-मूर्ति के सामने श्रद्धा पूर्वक दण्डवत करना वन्दन भक्ति है।

७) दास्य भक्ति- दूसरे किसी का आश्रय छोड़ कर केवल परमात्मा में मन लगा लेने का नाम दास्य भक्ति है।

सख्य भक्ति—प्रेम से प्रेरित होकर प्रभु के लिये उपचार करना सख्य भक्ति है। जैसे कि श्रीकृष्ण जी के सुदामाजी और अर्जुन भक्त थे।

९) आत्म निवेदन भक्ति—सब धर्मों को छोड़ कर केवल ईश्वर को आत्म समर्पण कर देना, जैसे- कि श्रीमद्भगवत गीतामें कहा है:-

सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज

इस नवधा भक्ति को किसी संस्कृत कवि ने एक श्लोक में वर्णन किया है:-

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

इन नव प्रकार की भक्ति को करता हुवा प्राणी यदि इसके फलकी इच्छा न करे तो यह 'उत्तम भक्ति कहाती है। इसे 'अर्पित भक्ति' भी कहते हैं। जो किसी मतलब से ईश्वर से की जाती है उसे अर्थार्थी भक्ति कहते हैं।

भगवान् श्रीकृष्णजी गीता में अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते हैं कि "हे अर्जुन! आर्त्त, जिज्ञासु अर्थार्थी और ज्ञानी यह चार प्रकारके प्राणी मेरा भजन करते हैं। इनमें ज्ञानीही सर्व श्रेष्ठ है उसको मैं प्यारा हूं और वोह मुझे प्यारे हैं"। इसलिये सबको निष्काम भाव से भगवद्भक्ति करनी चाहिये। भगवान् १२ वीं अध्याय में कहते हैं कि "जिन्होंने मुझ में मन लगाया हुवा है और नित्य श्रद्धा पूर्वक मेरी उपासना करते हैं वे भक्त मुझे परम प्रिय हैं। जिन भक्त पुरुषों ने अपने समस्त कर्म मुझे अर्पण कर दिये हैं, और अनन्य भाव से मेरी उपासना करते हैं उनको मैं शीघ्र ही संसार सागरसे पार कर देता हूं। इसलिये भगवान् को ही अपने मन और बुद्धि अर्पण करदो इसी से ऊर्ध्व गति की प्राप्ति होगी। भगवान् कहते हैं "कि जो नित्य सन्तुष्ट रहते हैं, योगाभ्यासी हैं, दृढ निश्चयी हैं और जिन्होंने अपना मन और बुद्धि मुझे अर्पण कर दिया है, वे ही भक्त मुझे परम प्रिय हैं। इसलिए हर्ष और आमर्ष, भय और उद्वेग शुभ और अशुभ, शत्रु और मित्र, मान और अपमान, शीत और उष्ण, सुख और दुःखादि समस्त द्वन्द्वों से पद्म पत्रवत् असङ्ग रह कर भगवत् परायण होना और अपनी समस्त क्रियाओं को श्रद्धा भक्ति पूर्वक भगवत् के अर्पण करना यही भक्तिका मुख्य मार्ग है।

महात्माओं के वाक्य

कहते हैं कि प्रेम का आनन्द चखने के ही लिये आत्मा एक बार फिर अस्थि पिंजर में बन्द होने को राज़ी हुवा है।

प्रेम से हृदय स्निग्ध हो उठता है और उस स्नेह रूपी शीतलता से ही मित्रता रूपी बहु मूल्य रत्न पैदा होता है।

भाग्यशाली का सौभाग्य इस लोक और परलोक दोनों स्थानों में उसके निरन्तर प्रेम का ही पारितोषक है।

वे मूर्ख हैं जो कहते हैं कि प्रेम केवल नेक आदमियों के ही लिये है, क्योंकि बुरों के विरुद्ध खड़े होने के लिये भी प्रेम ही मनुष्य का एक मात्र साथी है।

देखो, शक्ति हीन कीड़े को सूर्य किस तरह जला देता है! ठीक इसी तरह नेकी उस मनुष्य को जला डालती है जो प्रेम नहीं करता।

जो मनुष्य प्रेम नहीं करता वह तभी फलेगा जब कि मरु भूमि के सूखे हुए वृक्ष के ठूण्ठ में कोपलें निकलेंगी।

बाह्य सौन्दर्य किस काम का जब कि प्रेम, जो आत्मा का भूषण है, हृदय में न हो।

प्रेम जीवन का प्राण है। जिसमें प्रेम नहीं वह केवल मांस से घिरी हुई हड्डियों का ढेर है।

जब घर में महमान हो तब चाहे अमृत ही क्यों न हो, अकेले नहीं पीना चाहिये।

घर आये हुए अतिथि का आदर सत्कार करने में जो कभी नहीं चूकता उस पर कभी कोई आपत्ति नहीं आती।

जो आदमी बाहर जाने वाले अतिथि की सेवा कर चुका है और आने वाले की प्रतीक्षा करता है, ऐसा आदमी देवताओं का सुप्रिय अतिथि है।

जो मनुष्य अतिथि यज्ञ नहीं करता, वह एक दिन कहेगा कि, मैंने मेहनत करके एक बड़ा भारी खज़ाना जमा किया, मगर हाय! वह सब बेकार हुवा क्योंकि वहां मुझे आराम पहुंचाने वाला कोई नहीं है।

धन वैभव के होते हुए भी जो यात्रों का आदर सत्कार नहीं करता, वह मनुष्य नितान्त दरिद्र है।

अनीचा का पुष्प सूंघने से मुर्झा जाता है, मगर अतिथि का दिल तोड़ने के लिये एक निगाह काफी है।

सत्पुरुषों की वाणी ही वास्तव में सुस्निग्ध होती है क्योंकि वह दयार्द्र, कोमल और बनावट से खाली होती है।

नम्रता, और स्नेहार्द्र वक्तृता केवल यही मनुष्य के आभूषण हैं और कोई नहीं।

वे शब्द जो सहृदयता से पूर्ण और क्षुद्रता से रहित होते हैं, इह लोक और परलोक में लाभ पहुंचाते हैं।

मीठे शब्दों के रहते हुए भी जो मनुष्य कड़वे शब्दों का प्रयोग करता है वह मानो पक्के फल को छोड़ कर कच्चा फल खाना पसन्द करता है।

औदार्यमय दान से भी बढ कर सुन्दर गुण, वाणी की मधुरता और दृष्टि की स्निग्धता तथा स्नेहार्द्रता में है।

हृदय से निकली हुई मधुर वाणी और ममता मयी स्निग्ध दृष्टि के अन्दर ही धर्म का निवास स्थान है।

———

भगवद्भक्ति

[ले० श्री० पूज्य भोले बाबा जी अनूपशहर]

वां विदित्वाऽखिलं बन्धं निर्मथ्याऽखिलवर्त्मना।
योगी याति परं स्थानं सा मां पातु सरस्वती ॥

छप्पय

निर्मल बुद्धि कुशाग्र सार निस्सार लखत है
सूक्ष्म तत्व क्षेत्रज्ञ अज्ञ नहिं जानि सकत है
घट द्रष्टा घट भिन्न त्योंहि भूतों का द्रष्टा
है भूतों से भिन्न शुद्ध चिन्मात्रिक स्रष्टा
भोला! भगवद्भक्त ही भगवत् दर्शन करि सकें
जे माया के भक्त हैं, ते नहिं माया तरि सकें

जीव के अस्तित्व में आक्षेप।

मं

सारामः-महाराज! आप ने भक्ति का स्वरूप कहा, भगवत् का स्वरूप बताया और भक्तों की महिमा कही और वेदमें भी ईश्वर तत्वके जानने के लिये कर्म, उपासना और ज्ञान तीन उपाय बताये हैं परन्तु यह सब तो तब होसकता है जबकि पृथिवी आदि पंच भूतों से भिन्न कोई जीव तत्व हो! शरीर पृथ्वी आदि पांच तत्वों से उत्पन्न हुआ है, पांच तत्वों का समुदाय ही जीव है, यानी उन पांचों के मेल का नाम ही जीव है, भिन्न कोई जीव नहीं है क्योंकि जैसे खाट अलग होती है, खाट पर सोने वाला पुरुष अलग होता है इसी प्रकार देह से भिन्न जीव होना चाहिये, देह से भिन्न जीव रूप कोई पदार्थ देखने में नहीं आता! यदि होता तो अवश्य देखने में आता! खाट का एकाद पाया अथवा पट्टी टूट जानेसे पुरुष का कुछ बिगड़ता नहीं इसी प्रकार यदि जीव देह से भिन्न हो तो एकाद तत्व के नाश होने पर जीव का नाश न होना चाहिये परन्तु जैसे खाट का एकाद अंग नष्ट होजाने से खाट नष्ट होजाती है इसी प्रकार देह में के एकाद तत्व के नष्ट होजाने से बाकी के चार तत्वों का नाश भी देखने में आता है इस लिये खाट पर बैठे हुए पुरुष के समान देह के तत्वों से जीव भिन्न नहीं है। किन्तु पांच तत्वों का समुदाय ही जीव है। जहां समुदाय नहीं होता वहां जीव भी नहीं होता और जहां समुदाय होता है, वहीं जीव दिखाई देता है इस लिये अन्वय व्यतिरेक से तत्वों का समुदाय ही जीव है, यदि प्राणी जल नहीं पीता तो जल तत्व नष्ट हो जाता है और समुदाय का भंग हो जाने से जीव नष्ट हो जाता है। यदि श्वांस बन्द हो जाय तो वायु नष्ट हो जाता है, यदि पेट फट जाय तो आकाश नष्ट हो जाता है भोजन न करे तो अग्नि नष्ट होजाता है और व्याधि होने से अथवा सूजन चढ़ जाने आदि से पृथिवी तत्व नष्ट होजाता है। इस प्रकार यदि पांचों में से किसी एक तत्व का नाश हो जाय तो अन्य तत्व भी अपने उत्पत्ति स्थान रूप मुख्य तत्व में मिल जाने से संघात-शरीर समुदाय नष्ट हो जाता है। उपरोक्त पांच प्रकार से किसी एक तत्व के चले जाने पर जीव रहता हो, तो विषयका ग्रहण करे, बोले, सुने अथवा देखे परन्तु ऐसा नहीं होता यानी कोई क्रिया होती हुई नहीं दीखती, जिस से जानने में आवे कि

समुदायके नष्ट होजाने परभी 'जीव' है। इसलिये पांच तत्वोंके समुदाय कोही जीव कहना चाहिए जब 'जीव' नाम का कोई भिन्न पदार्थ है ही नहीं तो परलोक भी मिथ्या ही है। जब परलोक मिथ्या है तो कोई रूप 'गाय मुझे तारेगी' इस लोभ से गाय दान करके मर गया तो वह गाय किस को तारेगी ? क्योंकि गाय, गाय का देने वाला और लेने वाला, ये सब इस लोक में ही लोप होगये तब उन का परलोक में कैसे समागम होगा ? जिस देहको जला दिया गया, पशु पक्षी खा गये, अथवा जो वायु में सूख गया अथवा पृथ्वी में मिल कर पृथ्वी रूप होगया, वह देह फिर किस प्रकार जी उठेगा ? यदि आप कहो कि तत्वों के समुदाय रूप देह का नाश हो जाता है परन्तु देह के मूल भूत कर्म का नाश नहीं होता इस लिए मूल होने से देह रूप वृक्ष फिर उपज आता है तो यह आप का कहना ठीक नहीं है क्योंकि नये वृक्ष के उपज आने का कारण बीज प्रत्यक्ष देखने में आता है किन्तु नये देह के उत्पन्न होने का कारण रूप कर्म-बीज किसी स्थान पर देखने में नहीं आता। मूल वृक्ष फिर उत्पन्न नहीं होता किन्तु दूसरे बीज में से वृक्ष उत्पन्न होता है, फिर मरा हुवा प्राणी कैसे उत्पन्न होगा ? शरीर उत्पन्न होने का जो प्रत्यक्ष बीज देखने में आता है, वह तो प्रथम से ही उत्पन्न हो चुका है, उसी में से नया देह उत्पन्न होता है, बीज उत्पन्न होने के बाद जब वृक्ष नष्ट होजाता है, तो फिर नहीं उगता किन्तु पहिले बीज में से नया वृक्ष उत्पन्न होता है इसी प्रकार जो प्राणी एकबार मर जाता है वह तो नष्ट ही होजाता है, उसके बीज से नई संतति उत्पन्न होती रहती है। इसी प्रकार बीज में से बीज उत्पन्न होता रहता है।

जीवात्मा के स्वरूप का निर्णय।

मस्तरामः-मंसाराम ! दिये हुए दान का, किए हुए कर्म का और जीव का नाश नहीं होता, मात्र शरीर का नाश होता है, जीव तो इस शरीर में से निकल कर दूसरे शरीर में चला जाता है, जैसे लकड़ी जल जाने से लकड़ी में रहे हुए अग्नि का नाश नहीं होता इसी प्रकार शरीर का नाश होने से उस में रहे हुए जीव का नाश नहीं होता।

मंसारामः- वाह ! आप कहते हैं कि अग्नि के समान जीव का नाश नहीं होता, मैं ऐसा मानता हूं, कि लकड़ी जल जाने से अग्नि शान्त होजाता है क्योंकि फिर दिखाई नहीं देता इस से सिद्ध होता है कि उसका नाश होजाता है। इसी प्रकार जीव का भी नाश होजाता है। क्योंकि देह के नष्ट होजाने के बाद जीव कहीं देखने में नहीं आता ! जैसे लकड़ी जलने के बाद शांत हुआ अग्नि नष्ट होजाता है इसी प्रकार जीव भी नष्ट हो जाता है क्योंकि उसकी गति, प्रमाण अथवा स्थिति कुछ भी जानने में नहीं आती, यानी न तो यह मालूम पड़ता है कि वह कहां चला गया, न यह जानने में आता है कि वह कितना बड़ा है और न यह देखने में आता है कि कहां पर स्थित है। इस से सिद्ध होता है कि जीव है ही नहीं, होता तो अवश्य जानने में आता !

मस्तरामः- भाई अग्नि काठ का आश्रय है, लकड़ी के सहारे अग्नि जलने में आता है, जब लकड़ी जल जाती है तो अग्नि के आश्रय रूप लकड़ी के नष्ट हो जाने से अग्नि स्वयं ग्रहण करने में नहीं आता और सूक्ष्म होने से तथा आकाश के समान सर्वत्र, व्यापक और नित्य होने से जानने में नहीं आता,

इसी प्रकार देह का नाश हो जाने पर जीव अपने आश्रय रूप देह के नष्ट हो जाने से, स्वयं सूक्ष्म होने से और आकाश के समान सर्व व्यापक और नित्य होने से जानने में नहीं आता! यदि मंथन करने से पूर्व काष्ट में अग्नि न होवे तो काष्ठ के मंथन मात्र से अग्नि प्रकट न होना चाहिये। काष्ट में पूर्व अग्नि मौजूद है, मंथन से मात्र प्रकट हो आता है जैसे कि तिलों के पेलने से तेल प्रकट हो आता है। जिस पदार्थ में तेल नहीं होता, उसे चाहे जितना पेलो, कभी तेल नहीं निकलता। इसी प्रकार यदि काष्ठ में अग्नि न होवे तो मंथन करने पर भी प्रकट न होवे परन्तु अग्नि सर्वत्र है इस लिये काष्ठ को मथने से प्रकट हो आता है। इसी प्रकार जीव सर्वत्र है, भूतादि के संयोग होने से, वह मात्र उन में प्रकट जानने में आता है और संयोग का नाश होने से प्रकट दीखना बन्द हो जाता है, नष्ट नहीं होता! इस लिये ऐसा समझना चाहिये कि शरीर का नाश होने से जीव आकाश के समान रहता है और अग्नि के समान सूक्ष्म होने से जानने में नहीं आता। जो विज्ञानमय अग्नि प्राणों को धारण करता है, उस का नाम जीव है। देह में वायु से अग्नि की स्थिति है इस लिये वायु ही विज्ञानमय जीव को धारण करने वाला है। श्वास निश्वास रूप वायु के रुक जाने से जीव नष्ट यानी अदृश्य हो जाता है। शरीर में रहा हुवा वह विज्ञानमय अग्नि जब नष्ट--अदृश्य हो जाता है तब देह अचेतन हो कर पृथिवी पर गिर पड़ता है और पृथिवी में लय हो जाता है, सब स्थावर और जंगम शरीरों की यह ही गति होती है यानी आकाश का भाग आकाश में मिल जाता है, पवन भी आकाश में रहने वाला होने से आकाश में चला जाता है और अग्नि पवन के आधार से रहा हुवा होने से, पवन के साथ चला जाता है। इस प्रकार आकाश, पवन और अग्नि ये तीन भूत तो आकाश में रहते हैं और जल और पृथिवी ये दो भूत पृथिवी में रहते हैं, मूर्तिमान देहधारी के देह के तीन तत्व आकाश, वायु और अग्नि मूर्ति रहित हैं इस लिये जहां आकाश रहता है, वहीं पवन रहता है और जहां पवन रहता है, वहां ही अग्नि रहता है। जल और पृथिवी मूर्ति वाले हैं, इस लिये वे दोनों साथ रहते हैं।

मंसाराम:- महाराज! शरीर धारियों के शरीर में अग्नि, वायु आकाश, जल और पृथिवी रहे हुये हैं, यह बात तो समझ में आती है परन्तु शरीर में रहे हुये जीव का क्या लक्षण है? यह मुझ से कहिए? जो शरीर पांच भूतों से उत्पन्न हुवा है। उस शरीर में रह कर जो पांच विषयों से प्रीति करता है और जो पांच ज्ञानेन्द्रियों के ज्ञान का साधन होने से चेतन जान पड़ता है, वह जीव कौन है? उसको मैं जानना चाहता हूं। रुधिर, मांस, मेदा, स्नायु और अस्थि का समुदाय रूप यह शरीर जब नष्ट हो जाता है तब शरीर में जीव दिखाई नहीं देता। यदि पांच भूतों का समुदाय रूप शरीर बिना जीव का जड़ होय तो शरीर को जब मानस पीड़ा होती है, तो उस पीड़ा को कौन जानता है? महाराज यदि शरीर जीव नहीं है तो मन जीव है क्योंकि जो कोई कुछ कहता है तो कान से सुनने में आता है, यदि मन व्यग्र होता है तो दोनों कान खुले रहने पर भी कुछ सुनाई नहीं देता, इस लिए मन ही जीव है, मनके सिवाय कोई दूसरा जीव नहीं है। मनसे युक्त नेत्रों से ही सब लोग पदार्थों को देखते हैं, यदि मन व्याकुल होता है तो खुली हुई आंखों से भी कुछ नहीं

सूझता। जब मनुष्य निद्रा में पड़ा होता है तो नेत्र होने पर भी नहीं देखता, नासिका होने पर भी नहीं सूंघता, कान होने पर भी नहीं सुनता, मुख होने पर भी नहीं बोलता, जिह्वा होने पर भी स्वाद को नहीं जानता और त्वचा होने पर भी स्पर्श को नहीं जानता, शरीर में हर्ष कौन करता है? क्रोध कौन करता है? शोक कौन करता है? उद्विग्न कौन होता है? इच्छा कौन करता है? चिंतन कौन करता है? और कौन वाणी का उच्चारण करता है?

मस्तराम:- भाई! जिस शरीर में जो श्रोत्र इन्द्रिय है, वह अपने सजातीय शब्द को सुनती है क्योंकि श्रोत्रेन्द्रिय और शब्द गुण दोनों आकाश के सम्बन्ध वाले हैं इसी प्रकार पांचों भूतों में से उत्पन्न हुवा मन भी एक इन्द्रिय है। इस लिये वह पाचों विषयों को ग्रहण करता है। मन पांचों इन्द्रियों का साधन है, यह मन शरीर को नहीं चला सकता, अंतरात्मा ही इस शरीर को चलाता है, वह ही गंध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द को जानता है। वह अंतरात्मा इस पंच भूतात्मक शरीर में व्यापक होकर स्थित है और वह ही पांचों विषयों को ग्रहण करता है। देह के सुख दुःख को भी वह ही जानता है। उस का वियोग होने पर देह किसी सुख दुःख को जान नहीं सकता, जब आत्मा देह का त्याग करता है तब शरीर का अग्नि शांत हो जाता है। पश्चात् न तो शरीर में उष्णता रहती है, और न वह रूप को ग्रहण कर सकता है किन्तु मर जाता है। शरीर ही मरता है, चेतन नहीं मरता, चेतन तो शरीर को छोड़कर चला जाता है. देहके समान नष्ट नहीं होजाता जिस प्रकार स्थूल देहका नाश होजाता है इसी प्रकार सूक्ष्म शरीर का नाश नहीं होता किन्तु सूक्ष्म शरीर की बदली हुआ करती है। जैसे पांच स्थूल भूतोंका स्थूल शरीर बना हुआ है इसी प्रकार सूक्ष्म पांच भूतों का सूक्ष्म शरीर बना हुवा है। सूक्ष्म भूत समुदाय को शास्त्रवेत्ता जल कहते हैं! यह सर्व विश्व जलमय है और देह धारियों का देह भी जल ही है। उस जल में ब्रह्माण्डभर के लोकों को उत्पन्न करने वाला मानस ब्रह्मदेव रहता है। इस मानस ब्रह्मदेव को 'सूत्रात्मा' कहते हैं यानी सूक्ष्म भूतों के बने हुये सूक्ष्म देह में मन रहा हुआ है। यह मन सब लोकों की कल्पना करता है, जिस प्रकार जिसकी कल्पना करता उसी प्रकार का वह उस को दिखाई देता है। सूक्ष्म शरीर में रहा हुआ 'सूत्रात्मा' जीव है. इसको क्षेत्रज्ञ भी कहते हैं। इस क्षेत्रज्ञ में प्रकृति सम्बन्धी गुण मिले हैं। जब त्रिगुणात्मक मूल प्रकृति के इन्द्रिय आदि विकारों से क्षेत्रज्ञ मुक्त हो जाता है तब उस को ही परमात्मा कहते हैं। यानी जब मन की सब कल्पनाऐं निर्मल हो जाती हैं तब जीव उपाधि रहित होने से ब्रह्म रूप हो जाता है, हे मस्तराम! तू उस क्षेत्रज्ञ को ही आत्मा जान वह ही सब लोगों को सुख देने वाला और सुख रूप है, पूर्वोक्त स्थूल और सूक्ष्म देहों में यह आत्मा रहा हुवा है। जैसे कमल में जलके बिन्दु रहते हैं उसी प्रकार आत्मा देह में रहा हुवा है, इस दृष्टान्त से यह समझना चाहिए कि कमल में जल के बिन्दु रहने पर भी कमल जल से भिन्न और निर्लेप है इसी प्रकार आत्मा देह में रहने पर भी देह से भिन्न और निर्लेप है।। यह क्षेत्रज्ञ नित्य और आनन्द स्वरूप है, यह ही परमात्मा और यह ही सब लोगों के लिए हित रूप है। जब यह आत्मा तम, रज और सत्व इन तीनों गुणों से युक्त होता है तब 'जीव'

कहलाता है, जब देह इन्द्रिय और मन चेतन से युक्त होते हैं तब उनको 'जीवगण' कहते हैं। ये 'जीवगण' अनेक प्रकार की चेष्टा करते हैं और जैसे नट डोरी से बंधी हुई पुतली को नचाता है उसी प्रकार सर्वात्मक ब्रह्म उन से अनेक चेष्टायें कराता है, यह ब्रह्म जीव से भिन्न और असंसारी है, इसको क्षेत्रज्ञ कहते हैं। यह ही चौदह लोकों की प्रवृत्ति का कारण है और यह ही पुण्य पाप का फल देने वाला है, देह का नाश होने परभी जीव का नाश नहीं होता, और जो ऐसा कहते हैं कि मर गया, यह मूर्ख पुरुषों का मिथ्या वचन है। जीव मात्र एक देह में से दूसरी देह में जाता है और उस का देह पांच भूतों में मिल जाता है इसलिए उसको दूसरा देह धारण करना पड़ता है। आत्मा सर्व प्राणियों में रुका हुवा और गूढ़ होकर रहता है। तत्ववेता पुरुष सुई के अग्र भाग के समान सूक्ष्म बुद्धि से उसको जानते हैं। तात्पर्य यह है कि देह और इन्द्रियों में लीन होकर रहा हुवा आत्मा देह और इन्द्रियोंके अज्ञान से ढका हुआ है इस लिये जानने में नहीं आता किन्तु मैं ब्रह्म हूं इस वाक्य की करण रूप बुद्धि की वृत्ति से आत्मा जानने में आता है और आवरण करने वाले अज्ञान के नाश पूर्वक देहादि से आत्मा का विवेक करने पर आत्मा का साक्षात्कार होता है। जो युक्त आहार विहार करने वाला धीर पुरुष पवित्र होकर पूर्व रात्रि और पिछली रात्रि में योग द्वारा उसकी खोज करता है, वह आत्मरूप से अपने में आत्मा का दर्शन करता है। जब चित्त निर्मल हो जाता है और चित्त की प्रवृत्ति अन्तर्मुख होजाती है तब शुभाशुभ कर्म का त्यागने वाला और प्रसन्न चित वाला पुरुष आत्मा में स्थित होकर मोक्ष सुख को भोगता है। जरायुजादि से ढके हुए शरीर और मन में आविर्भूत हुआ जो अग्नि है यानी अग्नि के समान प्रकाश रूप जो पुरुष है, उसको लोग जीव कहते हैं। वह आत्मा प्रजापति—सर्वेश्वर है और उसी से यह प्रत्यक्ष सृष्टि उत्पन्न हुई है। यह कथन व्यवहार पक्ष को लेकर नहीं है किन्तु शास्त्र दृष्टि से है यानी जीव सृष्टि का कर्ता नहीं है किन्तु जीव का शुद्ध स्वरूप जो परमार्थ तत्व है, उसमें यह सब प्रपंच कल्पित हैं। हे संसारास ! इस सबका सारांश यह है कि वस्तुतः परमात्मा अंश अंशीभाव से रहित, एक अद्वितीय अखंड सच्चिदानन्दघन है। वह ही परमात्मा अपनी माया शक्ति से इस सब जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय का कारण है, वह सब का नियामक होने से ईश्वर कहलाता है वह ही सबको धर्माधर्म का फल देने वाला है, वह ईश्वर सर्वज्ञ है अपने को जानता है और चराचर सब जगत् को भी जानता है। वह ही परमात्मा जब अपनी अविद्या शक्ति से दब कर अपने को भूल जाता है, तब जीव कहलाता है, जीव न तो अपने को जानता है और न ईश्वर को जानता अपने को नहीं जानता, इस कहने का तात्पर्य यह है कि अपना यथार्थ रूप नहीं जानता, कुछ का कुछ जानता है। जो अपने को नहीं जानता, वह दूसरे को भी यथार्थ नहीं जान सकता क्योंकि सर्व वस्तुयें अपने २ केन्द्रपर से ही ठीक दिखाई देती हैं। आत्मा सब का केन्द्र है आत्मा पर से देखने से ही सब वस्तुयें यथार्थ दीखती हैं, जो आत्मा को नहीं जानता, वह अपने माने हुये आत्मा से वस्तुओं को देखता है इस लिए माने हुए आत्मा पर से देखने वाले का अनुभव यथार्थ नहीं होता, किन्तु कुछ का कुछ होता है, इसी को अविद्या

या विपर्य्य ज्ञान कहते हैं। विपर्य्य ज्ञान वाला आत्मा ही जीव कहलाता है। यह जीवात्मा अनित्य को नित्य मानता है, अशुचि को शुचि मानता है, दुःख को सुख मानता है और अनात्मा को आत्मा मानता है यानी स्वर्गादि लोक अनित्य हैं, उनको नित्य मानता है। देहमें रक्त, मांस, मज्जा आदि सब अशुचि पदार्थ हैं, ऐसे देह को शुचि मानता है विषय भोग दुःख रूप हैं उन को सुख रूप मानता है, पशु, सुतादि चेतन पदार्थ, और शय्या आसन आदि अचेतन पदार्थ, शरीर, इन्द्रिय और मन ये सब अनात्म हैं, इनको आत्मा मानता है। यह जीवात्मा अपने को न जानने से अन्तःकरण के धर्म अपने में मान कर अपने को कर्ता, भोक्ता, मानकर सुखी दुःखी होता है, अनुकूल पदार्थों में राग करता है, प्रतिकूल पदार्थों में द्वेष करता है यानी सुख और दुःख के साधनों की प्राप्ति की इच्छा किया करता है और दुःख और दुःख के साधनों की प्राप्ति नहीं चाहता, यह जीवात्मा जिस पदार्थ को अपना मान लेता है, उस की रक्षा करने की हमेशा इच्छा करता है और यदि वह पदार्थ छीन लिया जाय तो दुःखी होता है। सुख की प्राप्ति और दुःख की अप्राप्ति के लिये जीव अनेक अनेक कर्म करता है और कर्म करने से अनेक प्रकार की योनियों में जाकर नाना प्रकार के भोग भोगता है। कभी शुभ कर्म का फल देवादि योनि प्राप्त करता है, कभी शुभाशुभ कर्म का फल मनुष्य जन्म पाता है और कभी अशुभ कर्मों का फल भोगने के लिये पशु कीट पतंगादि योनियों में जन्म लेता है। मनुष्य शरीर के सिवाय अन्य सब शरीर भोग मात्र ही होता है। मनुष्य शरीर में भोग के सिवाय अन्य उच्च लोकों की प्राप्ति कराने वाले कर्म भी होते हैं, ईश्वर की भक्ति भी मनुष्य शरीर में होसकती है इसलिये मनुष्य शरीर अन्य सब शरीरों से उत्तम है। मनुष्य भिन्न २ प्रकृति वाले होते हुये भी तीन प्रकार के हैं, एक पापी, दूसरे पुण्यात्मा, और तीसरे भगवत् भक्त। पापी मनुष्य जगत् का और अपना अहित करते हैं। दूसरों को पीड़ा देने से पराया अहित करते हैं और पर पीड़ा रूप पाप के फल से आप यमयातना में अनेक कष्ट भोगते हैं। ऐसे लोग वृक्ष, पशु, पक्षी, चांडालादि योनियों में ही घूमते रहते हैं, इनको स्वर्ग लोक-उच्च लोकों की प्राप्ति नहीं होती, दूसरे पुण्यात्मा यज्ञ, तप, दानादि शुभ कर्म करते हैं, कूप तड़ागादि बनवाते हैं, इन शुभ कर्मों का फल भोग कर पीछे मनुष्य लोक में आते हैं और फिर कर्म करते हैं, इस प्रकार कभी ऊंचे और कभी नीचे आते जाते ही रहते हैं। भगवद्भक्त दो प्रकार के होते हैं, एक मुमुक्षु और दूसरे ज्ञानी। मुमुक्षु एक दो अथवा अधिक जन्मों में भगवत् तत्व का साक्षात्कार करके मुक्त होजाते हैं। और ज्ञानी भक्त तो जन्म, मरण, भोग, मोक्ष सब को माया मात्र जानते हैं, वे इन में से किसी का न तो आदर करते हैं न किसी से द्वेष करते हैं, केवल भगवद्भक्ति में ही तल्लीन रहते हैं।। चाहे कितने ही कल्पों तक शरीर रहे, चाहे कल्प भर रहे अथवा क्षण भर भी न रहे, भक्त को इस पर कुछ भी ध्यान नहीं होता। इन भक्तों की सब क्रीड़ायें भगवत् प्राप्ति के लिये ही होती हैं, इनमें अपना और अपने कर्तव्य का किंचित् भी अभिमान नहीं होता। ऐसे भक्त किसी से राग अथवा द्वेष नहीं करते। इनके लिये शत्रु मित्र समान होते हैं, सब में भगवत् को ही देखते हैं, सब से रागद्वेष रहित वर्तते हैं, सब को

हितोपदेश देते हैं। ऐसे भक्तों का महात्म्य पूर्व में मैं तुम्हें कह चुका हूं, इन के नाम प्रसंग पर जब इनकी कथा सुनाऊंगा, तब बताऊंगा। ऐसे भक्त और उनके अनुकरण करने वाले धन्य हैं, तारण तरण हैं यानी आप भी तर जाते हैं और दूसरों को भी तार लेजाते हैं, भक्तों का जन्म ही सफल है, भक्त ही जीते हैं, अन्य सब मृतक के समान हैं। यह ही बात नीचे के पद में दिखलाई है।

हरि भक्त का नाश नहीं होता

मिथ्या अमिथ्या सब जानते जे।
आत्मा अनात्मा पहिचानते जे॥
विश्वेश प्रेमी मन कर्म वाणी।
जीते सदाते हरि भक्त ज्ञानी॥१॥

कामी न क्रोधी सब के हितैषी।
रागी नहीं जे नहिं लेश द्वेषी॥
वैरी न जाने नहिं मित्र माने।
निन्दा प्रशंसा सम एक जाने॥२॥

हिंसा करें ना दुख दें न काहू।
जो दुःख देवे सुख देय ताहू॥
मेरा पराया मन में न लावें।
ते भक्त सांचे जग कीर्ति पावें॥३॥

आसक्ति नाहीं तनु माहिं राखें।
ना भूल के हू कटु वाक्य भाषें॥
सच्चे सयाने मन चित्त जीते।
आचार सीधा छल छिद्र रीते॥४॥

कर्तृत्व का है अभिमान नाहीं।
भोक्तृत्व छाया नहिं चित्त माहीं॥
कर्ता महा ना कुछ भी करें जे।
भोक्ता महा ना कुछ भोगते जे॥५

पृथ्वी फटे या जल बाढ़ आवे।
चारों दिशा में लग आग जावे॥
आंधी चले औ धुप सूर्य जावे।
ना भक्त तो भी मन क्षोभ पावे।६

भू आदि पांचों लय होय जावें।
ब्रह्मादि सारे सुर भी विलावें॥
कोई बचे ना सब नष्ट होवें।
भोला! सुखारी हरि भक्त सोवें॥७

हे मंसाराम! जैसे घट का द्रष्टा घट से भिन्न होता है इसी प्रकार पंच भूतों का द्रष्टा परमात्मा पंच भूतोंसे भिन्न है। वह ही परमात्मा समष्टि पंच भूतों का अभिमान करने से जीव कहलाता है। और व्यष्टि पंच भौतिक शरीर में अभिमान करने से जीव कहलाता है। जीव कर्मों का कर्ता भोक्ता है और ईश्वर कर्मों का फल देता है, यह ईश्वर ही भक्तों पर अनुग्रह और अभक्तों का निग्रह करता है जीव का ईश्वर भक्ति करने से ही कल्याण होता है इसलिए देह, देह के सम्बन्धी आदि सब

की आशा छोड़ कर स्वर्ग और मोक्ष की भी इच्छा न करके तनसे, मनसे और वाणी से भगवन् की शरण लेना जीव का और विशेष करके मनुष्य का मुख्य कर्तव्य है। हे मंसाराम! तू धन्य है जो तू ने जीव का स्वरूप पूछा है, जीव और ईश्वर के स्वरूप जाने बिना ईश्वर की भक्ति नहीं हो सकती, मैंने तुझे जीव का स्वरूप बताया है ईश्वर का स्वरूप भी बता चुका हूं अब अन्त में यह ही कहना है कि जैसे बने वैसे भगवत्परायण हो जा! इसी में तेरा कल्याण है।

ओं तत्सत्!

जीव तत्व शाश्वत अमर जानत जे हरिभक्त
भोला! ते जीवत सदा, जन्मत मरत अभक्त

मिलन

[ले० श्री० हरिकृष्णदास जी गुप्त देहली]

प्रियतम!

मुझे नहीं मालूम मैं किस दशा में था; मुझे नहीं पता, मैं किस अवस्था में था। मुझे नहीं ज्ञात, मैं सोता था अथवा जागता, अचेत था अथवा चेत में; बेहोश था अथवा होश में। ऐसी अज्ञात अवस्था में किसीने मेरा कन्धा स्पर्श किया। मैंने एक दम चिहुंक कर, पीछे फिर कर देखा तथा एक वृद्ध, तेजस्वी, शान्त सौम्य मूर्ति संन्यासी को, अपनी ओर, दया एवं करुणा भरी दृष्टि से निहारते पाया। मेरे नेत्र संन्यासी के तेज को न सह सके; नीचे की ओर झुक गये। कानों में संन्यासी के मीठे सहानुभूति भरे शब्द पड़े:-

तू कौन है और इस भयावने, निर्जन स्थानमें, ऐसी भयानक अन्धकारमई रात्रि में, किस लिए बैठा है? तेरे मुख पर दुःख एवं चिन्ता के चिन्ह क्यों दृष्टि-गोचर हो रहे हैं? तू उदास क्यों होरहा है?

मेरे से संन्यासीके इन सहानुभति-रस में सने प्रश्नों का कुछ उत्तर न बन पड़ा। मैं वैसे का वैसा ही चुपचाप बैठे का बैठा रह गया।

संन्यासी के माथे पर दो बल पड़ गये। वह कुछ सोच में पड़ गया। कुछ देर के पश्चात् इस प्रकार बोला :-

'वत्स! देख कैसी विकट, अन्धकार से छाई हुई रात्रि है! तारा-प्रदीप-गण भी, अन्धकार से पराजित होकर बुझ चुके हैं। शीतल वायु सन २ करती हुई शरीर में घुसी जाती है। मेरे विचार में, तेरा यहां इस समय बैठे रहना उचित नहीं है; अतः मेरे साथ चल"।

इतना कह कर संन्यासी ने मेरा हाथ पकड़ कर मुझे शीतल शिला के शीतल स्पर्श से व्यक्त किया। मैंने उस के इस कार्य रूपी चरण में कोई बाधा न डोर-उलझाई। उसमें एक विचित्र आकर्षण शक्ति थी जिस से प्रभावित होकर, मैं मन्त्र मुग्ध की भांति, उस के साथ २ चलने लगा।

× × × ×

एक जीर्ण शीर्ण एवं भग्न मन्दिर में, मैंने संन्यासी के साथ प्रवेश किया। संन्यासी ने द्वार के बग़ल की एक कोठड़ी में मुझे लेजा कर, एक आसन पर बिठाते हुए कहा:—

"वत्स! इस डरावनी, भयावनी, अन्धकार-मई रात्रि में, इस निर्जन स्थान में शिला पर बैठने की अपेक्षा, यहां आसीन होना अधिक सुखदाई होगा"।

इतना कहते २ संन्यासी भी मेरे सन्मुख ही एक आसन पर विराजमान होगया। मैंने अत्यन्त धीमे स्वर में पूछा:-"प्रभु! यह किस का घर है'

संन्यासी मेरी बात सुन कर आश्चर्यान्वित सा होता हुवा बोला:—

"तुझे यह भी नहीं मालूम, प्रिय वत्स! यह घर है उसी चंचल, चतुर, चालाक वृज के नाथ का जिस ने समस्त संसार को अपनी अनूठी कलाओं द्वारा नचा रखा है; उसी वृजपति का, जिस की चंचलता और चुलबुलाहट, असंख्य हृदयों को हर्ष से बल्लियों उछाल देती है, यह मन्दिर है उसी प्रेमावतार का जिसके प्रेम में अनगिनत गण, पागल बन बन के नाच रहे हैं।। यह निवास स्थान है उसी सर्वेश वृजेश का जिसने तव हृदय लड़ी में ... ...

संन्यासी का वाक्य पूरा होने से पूर्व ही मैं हर्ष से उछल पड़ा। उस के अमृतमय वचनों ने मेरे निर्बल शरीर में नवीन बल का संचार करदिया।

'अहा! क्या यहीं प्रियतम का घर है? क्या वह निष्ठुर यहीं छिपा बैठा है? मुझे शीघ्र से शीघ्र उसके पास ले चलो अब इंतज़ार की ताब नहीं है, मैं बहुत विकल हो चुका, बहुत बिलख चुका, तड़फ चुका। पूज्य संन्यासी! मुझ पर करुणा करो, मुझे प्रियतम के समीप शीघ्रातिशीघ्र लेचलो। तुम्हारा असीम अनुग्रह होगा, तुम्हारा अनंत उपकार मानूंगा"।

इतना कहते २ मैंने आसन से उठ कर संन्यासी के चरण पकड़ लिये। संन्यासी उत्तर में कुछ भी न कह कर, अन्दर की ओर ले चला। उसने मुझे एक कठोर निष्ठुर, चुलबुली, पाषाण मूर्ति के सम्मुख ले जा कर खड़ा कर दिया।

क्या तुम इसी से मुझे मिलाने लाये थे ... नहीं ... नहीं इस में प्रियतम नहीं हैं; ऐसी सैंकड़ों मूर्त्तियों के मैं दर्शन कर चुका हूं! प्रियतम! तुम कहां हो?

हताश हो कर, निराशा में भर कर, जिह्वा ने उपरोक्त शब्द निकाले।

संन्यासी ने मेरे शब्दों के उत्तर में कुछ न कहा। उसके नेत्रों में से एक विचित्र प्रकार की ज्वाला की लपटें निकलने लगी। इन लपटों भरे नेत्रों से उसने मेरे नेत्रों में आग फेंकनी शुरु की, मैं उस प्रचण्ड अग्नि की ताब न ला सका, अतः मैंने नयन झुका लेने चाहे। परन्तु अपने आपको विवशता पाश में बंधा पाया।

उस प्रचण्ड अग्नि ने मेरे नेत्रों में पहुंच कर तहलका मचाना आरम्भ कर दिया उसकी धधक, ऐसा ज्ञात होता था कि मानो नेत्रों को फूंके डाल रही है।

उस भीषण ज्वाला ने मेरे नयनों की ज्योति हरली, मैं नयन हीन हो गया।

नयनों में प्रकाश लौट आया। नयन उस समय हलके प्रतीत होते थे उस दिव्य प्रकाश में मैंने देखा कि न संन्यासी है न मन्दिर न मूर्त्ति,

केवल ... केवल तुम्हारी ही निरखने योग्य छवि तुम्हारी झलकने योग्य झांकी तुम्हारी ही प्यारी २ सांवरी सलोनी सूरत सन्मुख खड़ी है।

तुम मेरे सम्मुख खड़े थे। तुम्हारे अमृत भरे नयन अमृत वर्षा कर रहे थे। तुम्हारे होठों से आनंद पुष्पों की झड़ी लग रही थी।

मैंने चाहा दौड़ कर तुम्हारे चरणों को पकड़ लूं ताकि तुम पुनः चुलबुलापन दिखा कर मेरी प्रतीक्षा से थकित आंखों से ओझल न हो सको परन्तु मेरे बार २ विनय करने पर ... प्रार्थना करने पर ..... झिड़कने पर भी ... चरण रूपी घोड़े ... घोड़े ... टस से मस ... न ... हुए .....

मैंने चाहा तुम्हारे सुन्दर सुखद शीतल सीने से सीना लगा कर ... निज छाती को जलाती हुई अग्नि को शीतलता में परिवर्तित करदूं परन्तु ... यह चाह.....चाह ही रही...चरणों ने अपनी हठ नहीं छोड़ी। वे ..... अपने स्थान से ... ... तिलान्त न हिले ..... मैंने चाहा तुम्हारे अधरों पर अधर धर के अधरों पर से जमी पपड़ी उतार दूं, परन्तु...चाह ने..... पूर्ति का मुख ..... न देखा ..... मेरा शरीर शांत होगया था ..... सुन्न पड़ गया था। मैं..... अचेत सा ..... होगया था। इस अचेतता में ... ... इस सुन्नावस्था में ... ... इतनी कामनाओं के पूरी न होने पर भी, एक आनन्द था... एक महान् आनन्द था। ... ... वह आनन्द था ... तुम्हारी छबीली छवि निरखने का ... ... तुम्हारी बांकी झांकी झलकने का। इस पर भी ..... वज्र पात हुआ। गोरे अश्रुओं ने काले कपटी हृदय मित्र का काम किया। वे बिना बुलाये मेहमान की भांति नयनों की छाती पर चढ़ बैठे; तुम्हारी छवि झलकनी बन्द हो गई। मैं ... ... बिलबिला उठा, बिलख उठा, विकलता के अगाध सागर में डूबने लगा ... मृत प्रायः होगया .....

सहसा कानों में कुछ अमृत बूंदें टपकीं:-- "तात! मेरे से तुम्हारी कोई बात छिपी नहीं है। मैं तुम्हारी प्रत्येक चाह को प्रत्येक कामना को जानता हूं"।

बूंदों का प्रवाह कुछ रुका परन्तु दूसरे ही क्षण अधिक वेग से जारी हुआ।

"जितनी निकटता से तुम मुझे खोजते हो, उतनी ही निकटता से मैं मिलता हूं। तुम्हारी खोज कस्तूरी वाले हरिण की खोज थी" ..... बूंदें रुक २ के पड़ने लगीं:- "जितनी ... ... निकटता से ..... तुम ... मुझे पुकारते ..... हो..... उतनी ही ..... निकटता ... से ... मैं .. तुम्हारी ..... पुकार ..... सुनता हूं" .....

बूंदें रुक २ के पड़ रही थीं परन्तु उनमें मिठास... उन का रस प्रतिक्षण बढ़ता जाता था।

"मैं ..... तुम्हारे ..... निकट..... से ..... निकटतम..... समीप ..... से समीपतम हूं।"

आखिरी बूंद के टपकते ही हृदय मंदिर में एक अद्भुत दिव्य प्रकाश फैल गया। उस प्रकाश में ..... उस दिव्य प्रकाश में प्रियतम! मुझे ..... तुम्हारी ही ..... सुन्दर सलौनी मूर्त्ति हृदय-- सिंहासन पर-विराजी दिखाई दी।

देखते ही देखते उस दिव्य प्रकाश ने फैलना आरम्भ किया और यहां तक फैला कि सकल विश्व में छा गया। अंधकार को दुम दबा कर भाग जाना पड़ा।

उस दिव्य प्रकाश से प्रकाशित विश्व में, प्रियतम! मुझे ..... सर्वत्र ..... तुम ही तुम... दिखाई ..... दिये .....

मोहन के प्रति

[ले० श्री० श्रीराम "राम"]

आओगे कब कहो-दीन भारत में मोहन !
बीत रहा है हन्त ! कष्टमय मां का जीवन ॥
किं कर्त्तव्य विमूढ़, हाय वह भारत वासी ।
भूत पूर्व में रही-विश्व भू जिनकी दासी ॥
हिंद आज दुर्दैव वश, तेज हीन म्रियमाण है ।
याद रहे इस कष्ट का, तुमको करना त्राण है ॥

कच की गुरु भक्ति

प्राचीन काल की कथा है कि एक बार सुर और असुरों में त्रिलोक पर प्रभुता पाने के लिये आपस में घोर युद्ध हुआ। उस संग्राम में देवताओं ने अङ्गिरस के पुत्र बृहस्पति को अपना पुरोहित बनाया। इधर उनके शत्रु असुरों ने शुक्र को अपना पुरोहित बनाया। इन दोनों ब्राह्मणों में आपस में बड़ी स्पर्धा थी। युद्ध आरम्भ हुवा और देवताओं ने बड़ा पराक्रम दिखला कर दानवों को मार डाला। तब शुक्राचार्य ने अपनी संजीवनी विद्या के बल से उनको पुनः जीवित कर दिया। वह दानव फिर देवताओं से युद्ध करने लगे। इस युद्ध में मृत्यु को प्राप्त हुवे देवताओं को बृहस्पतिजी जीवित नहीं कर सके, क्योंकि वह उस विद्या को नहीं जानते थे जिस को शुक्राचार्य जानते थे। तब तो सब देवताओं को बड़ा शोक हुवा। उनको दुःखित देख कर शुक्राचार्य के ज्येष्ठ पुत्र कच संजीवनी विद्या प्राप्त करने के लिये वृषपर्वा नगर में शुक्राचार्य के पास गया। शुक्राचार्य ने पूछा "तू कौन है ? यहां किस हेतु तेरा आगमन हुवा है ?" कच ने कहा "मेरा नाम कच है, मैं अङ्गिरा का पौत्र और बृहस्पति का पुत्र हूं। आपका शिष्य बनने के लिये आपके समीप आया हूं। आप मुझे स्वीकार कीजिये, मैं सहस्र वर्ष पर्यन्त आपकी आज्ञा में रहता हुवा ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करूंगा और आलस्य रहित होकर सर्वदा आपकी आज्ञा और सेवा में तत्पर रहूंगा" कच की इस प्रकार की निष्कपट बात सुन कर शुक्राचार्य ने कहा "हे कच ! तू भला आया. मैं तुझे शिष्य रूप से स्वीकार करता हूं, तेरा कल्याण हो"।

कच शुक्राचार्य की सेवा में रहने लगा, जो कुछ भी आज्ञा वह देते उनका पालन आलस्य रहित होकर करता, उनके बताये हुवे ब्रह्मचर्यादि व्रतों को

सुदृढ़ मन से ग्रहण कर लिया, और अपने आपको अपने गुरु और गुरु पुत्री देवयानी की सेवा में लगा दिया। कच शीघ्र ही गुरु भक्ति, सेवा, तथा आज्ञा मानने के स्वभाव से अपने गुरु तथा देवयानी का कृपा पात्र बन गया। इस प्रकार से ५०० वर्ष व्यतीत हो गये। दानवों ने किसी प्रकार कच के मन की बात जानली, तबसे वह कच से द्वेष करने लगे। एक दिन जब कि कच अपने गुरुकी गौओंको चरा कर आरहा था तब दानवों ने उसको अकेला देख कर मार डाला और उसके शरीर के टुकड़े २ करके भेड़ियों को खिला दिया। सांयकाल हुई, गौ बिना गोपाल के ही अपने स्थान पर आगईं, तो देवयानी ने कच के बिना आई हुई गौओं के देख कर शुक्राचार्य से कहा कि "हे पिताजी! सूर्य अस्त हो चुका है, आप अग्नि होत्र भी कर चुके हैं, गौएं भी बिना गोपाल के वन से लोट आई हैं परन्तु कच देखने में नहीं आता, हो न हो कच को दानवों ने मार डाला है, परन्तु मैं आप से सत्य कहती हूं कि मैं उसके बिना जी नहीं सकूंगी"। शुक्राचार्य कहने लगे "पुत्री! कच परम गुरु भक्त है, वह मेरी आज्ञा का कदापि उल्लंघन नहीं कर सकता, वह चाहे कहीं भी क्यों न हो जब मैं उसे बुलाऊंगा तो वह तुरन्त बोलेगा, मैं अपनी संजीवनी विद्या के प्रयोग से मरे हुए कच को जिला देता हूं" तदनन्तर गुरु ने कच को पुकारा, कच उनकी संजीवनी विद्या के बल से गुरु की पुकार को सुन कर, भेड़ियों का पेट फाड़ कर तुरन्त गुरु के समीप आ खड़ा हुवा। उसको आया हुवा देख कर देवयानी ने उससे पूछा कि तू इतनी देर में क्यों आया कच ने कहा कि "मैं समिधा कुशा और लकड़ियां लेकर आता था कि आश्रम से थोड़ी दूर पर कुछ असुर आये और उन्होंने मुझे मारकर टुकड़े २ करके भेड़ियों को खिला दिया। तदनन्तर गुरु की संजीवनी विद्या के प्रभाव से मैं पुनः जीवन को प्राप्त होकर आपके समीप आया हूं"

दानवों ने अपना मनोरथ विफल हुवा देख कर एक बार फिर जबकि कच वन से पुष्पादि लेने गया था सुअवसर देख कर उसे मार डाला और पीस कर समुद्र में मिला दिया। पहिले की भांति पुनः कच को न आया हुवा देख कर देवयानी के कहने से शुक्राचार्य ने संजीवनी विद्या के प्रभाव से कच को पुनः जीवित कर दिया। तीसरी बार फिर एक बार दानवों ने कच को मार कर, उसके शरीर को जला कर और सुरा में मिला कर वह सुरा शुक्राचार्य को पिला दी। देवयानी ने इस बार फिर कच को न आया हुवा देख कर समझ लिया कि उसको जानवरों ने मार दिया है और शुक्राचार्य से उसे जिलाने के लिये कहा। शुक्राचार्य ने कहा "पुत्री मैं कच को कई बार जिला चुका हूं परन्तु यह दानव उसे मार देते हैं। वास्तव में यह असुर मुझे बड़ा दुःख देते हैं। यह कच ब्रह्मचर्य व्रत का धारण करने वाला, सत्य प्रतिज्ञ, सदाचारी, सत्यवादी, सौम्य स्वभाव तथा गुरु निष्ठ है। तेरे कहने से मैं फिर इसे जीवित करता हूं। यह कह कर शुक्राचार्य ने उसे पुकारा तो कच ने डर कर गुरु के पेट ही में से उत्तर दिया। शुक्राचार्य बड़े आश्चर्यान्वित हुए और उन्होंने कच से पूछा कि तू किस मार्ग से मेरे पेट में आया। कच ने कहा "गुरुजी! आपकी कृपा से मेरी स्मरण शक्ति नष्ट नहीं हुई है। असुरों ने अवसर पाकर मुझे मार दिया और जला कर भस्म करके वह भस्म मदिरा में मिला दी और वह मदिरा

था को पिला दी शुक्राचार्य ने देवयानी से कहा कि "बेटी ! अब मैं तेरा प्रिय किस प्रकार करूं ? जब मेरा मरण हो तब कच जीवित हो सकता है। मेरे पेट में रहा हुवा कच पेट का फोड़े बिना अन्य किसी उपाय से नहीं निकल सकता है। मेरा पेट फूटने पर मेरी मृत्यु अवश्यम्भावी है। देवयानी ने कहा "पिताजी आपका और कच का प्राणान्त दोनों ही मुझे शोक की अग्नि में भस्म कर डालेंगे"। तब शुक्राचार्य ने अन्य उपाय न देख कर कच से कहा "बृहस्पति कुमार कच ! तू सिद्ध रूप है, परम श्रद्धावान है, तेरी गुरु में अनन्य भक्ति है इस कारण तू यह संजीवनी विद्या पेट के भीतर ही रह कर सीखले और फिर मेरे पेट को फोड़ कर बाहर निकल आना और मुझे संजीवनी विद्या के बल से पुनः जीवित कर देना"। इतना कह कर शुक्राचार्य ने कच को संजीवनी विद्या सिखादी।

तदनन्तर जिस प्रकार पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा सूर्यास्त के पश्चात् पूर्व दिशा को फाड़ कर निकल आता है वैसे ही कच भी शुक्राचार्य की कोख को फाड़ कर निकल आया। बाहर निकल कर संजीवनी विद्या के प्रभाव से अपने गुरु को जिला दिया और प्रणाम करके कहने लगा:-

जैसे कोई किसी के दोनों कानों में विद्या रूपी अमृत को छिड़के तैसा ही उपकार आपने मुझ सकल विद्याहीन के ऊपर किया है। आपको मैं माता पिता के समान मानता हूं, आपके उपकार को जानता हुवा मैं कभी द्रोह नहीं करूंगा। जो कर्म काण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड रूप वेद विद्या के पढ़ाने वाले, विद्याओं के भण्डार रूप और पूजन करने योग्य गुरु का, उनसे विद्या पाने के अनन्तर सत्कार नहीं करते हैं वह पापी प्रतिष्ठा रहित होकर, मर कर पापियों के लोक नरक में जाते हैं।

शुक्राचार्य ने जाना कि यह असुर महामूर्ख हैं। इन्होंने मदिरा में मिला कर मुझे कच को पिला दिया। इस लिये मैं आज से नियम कर देता हूं कि:-

यो ब्राह्मणोऽद्य प्रभृतीह कश्चिन्,
मोहात्सुरांपास्यति मन्द बुद्धिः।
अपेत धर्मा ब्रह्महा चैव स स्याद्,
अस्मिँल्लोके गर्हितः स्यात्परे च ॥

आज से जो कोई मन्द बुद्धि ब्राह्मण मोह से सुरापान करेगा उसके धर्म का नाश हो जायगा, उसको ब्रह्म हत्या लगेगी और वह इस लोक में तथा परलोक में निन्दा का पात्र होगा। धर्म शास्त्रों में ब्राह्मणों के जो धर्म कहे हैं उनके भीतर ही मैं यह मर्यादा बान्धता हूं, सब लोकों में मेरी इस बान्धी हुई मर्यादा को सत्पुरुष, गुरु सेवा करना चाहने वाले ब्राह्मण, देवता तथा सब लोग सुनलें। इसके पश्चात् शुक्राचार्य ने दानवों को बुलाकर कहा कि "कच अब सिद्ध होगया है, क्योंकि इसने मेरे पास से संजीवनी विद्या प्राप्त करली है और साक्षात् ब्रह्म के समान प्रभावशाली हो गया है।

इसके पश्चात् कच एक सहस्र वर्ष पर्यन्त गुरु की सेवा में रहा। एक सहस्र वर्ष पूर्ण होने पर गुरु ने उसे जाने की आज्ञा दी। गुरु की आज्ञा पाकर कच स्वर्ग लोक को चला गया।

कर सकते हो पार तुम्हीं

[ले० श्री० मुरारी शर्मा 'अभय']

हे सर्वेश सदा सुख कारी, जीवन के आधार तुम्हीं ।
सत्य, प्रेम, करुणा, सब बलके हो भगवान् भंडार तुम्हीं ॥
दीन दुःखी सन्तप्त हृदय की, सुनकर करुणा पुकार तुम्हीं ।
पल में पहुंच तुरत करते हो, दुःखियों का उद्धार तुम्हीं ॥
पर पीड़ा से आर्त्त जनों के, सुनकर रुदन अपार तुम्हीं ।
सन्त-उभारन दुष्ट-दमन को, धरते हो अवतार तुम्हीं ॥
ले अवतार सदा करते हो, दानव दल संहार तुम्हीं ।
इसी तरह बस हर लेते हो, भगवन् भू का भार तुम्हीं ।
भारत-नौका पड़ी भंवर में, हो बस खेवन हार तुम्हीं ।
'अभय' न नाविक तुमसा कोई, कर सकते हो पार तुम्हीं ॥

अमूल्य पदार्थ

[ले० श्री० जयदयाल जी डालमियाँ]

प्रायः प्रत्येक मनुष्य की यही धारणा है कि जो वस्तु जितनी कठिनाई से मिलती है वह उतनी ही मूल्यवान् होती है। उदाहरण स्वरूप हीरे, मोती, मणि आदि की गिनती इसी श्रेणी में की जाती है। लेकिन मेरी समझ से इन वस्तुओं को अमूल्य कहलाने का अधिकार नहीं है। अमूल्य वस्तु वही है जिसके बिना काम न चल सके, फिर चाहे वह सुलभ हो या कठिनता से प्राप्तहो ! वैसे तो अपनी २ जगह सभी अमूल्य हैं। ईश्वर की सृष्टि में प्रकृति के नियम विरुद्ध कोई कार्य नहीं हो सकता फिर भी बहुत से पदार्थ ऐसे हैं जिनके न मिलने से हमारी कोई हानि नहीं हो सकती । यदि जवाहिरात आदि हमें न मिलें तो भी हमारा कार्य रुक नहीं सकता। तो फिर विचारणीय विषय है कि "अमूल्य पदार्थ क्या है" ?

जीवन निर्वाह के लिये जल वायु अन्न आदि की जितनी आवश्यकता है उतनी हीरे मोती की नहीं । लेकिन जीवन निर्वाह की सामग्री, उस दयालु परमात्मा ने इतने परिमाण में तैय्यार की है कि हमें

इसके अमूल्य पने का अनुभव ही नहीं होता। अब हम देख सकते हैं कि जो चीज़ जितने ज्यादा परिमाण में और जितनी सुलभ है वही सब से ज्यादा आवश्यकीय और अमूल्य है। सर्व प्रथम अन्न को ही लीजिये। अन्न अगर न भी मिले तो हम थोड़े समय के लिये जीवन धारण करने में समर्थ हो सकते हैं। लेकिन पानी बिना नहीं रह सकते। इस लिये अन्न की अपेक्षा पानी अधिक अमूल्य है, यद्यपि हमें अन्न के लिये ही ज्यादा कष्ट उठाना पड़ता है। जल बिना भी थोड़ा समय निकाल सकते हैं लेकिन वायु बिना तो रहना दुष्कर है। इसलिये जल से ज्यादा कीमती सहज प्राप्त वायु है। वायु से भी आकाश (अवकाश) कीमती है, जिसके बिना एक क्षण भी जीवन धारण करना कठिन है। इतना होते हुए भी क्या हम कभी इनके अमूल्य पने का अनुभव करते हैं? ये वस्तुएं हमारी अजानकारी में भी दूसरी जानकार वस्तुओं से कहीं अमूल्य हैं। हम इसका अनुभव नहीं करते हों इसलिये ये अमूल्य ही नहीं हो सकती, सो बात नहीं है। हम यदि अपनी कमी से दिन को रात कहें तो क्या दिन रात थोड़े ही हो सकता है? जिस तरह ये वस्तुयें हमारी अजानकारी में अमूल्य हैं उसी तरह और भी कोई पदार्थ ऐसा है जो इन सबकी अपेक्षा अमूल्य है। तब प्रश्न होता है कि वह कौनसा पदार्थ है? वह है:—

"हरि नाम"

हमारे बहुत से भाई तो अज्ञान वश "हरिनाम" की हंसी उड़ाते हैं। इसमें उनका दोष भी नहीं है। पांडु रोग ग्रसित मनुष्य को सभी वस्तुयें पीत वर्ण दिखाई देती हैं। जिस तरह हम जल, वायु और आकाश का अमूल्य पना अपने नित्य जीवन के व्यवहार में वर्तते हुये भी अनुभव नहीं करते इसीप्रकार "हरि नाम" का सर्वापेक्षा अमूल्य होने का हमें अनुभव नहीं होता। यह बात ध्रुव सत्य है कि 'हरिनाम' बिना प्राणी एक क्षण भी जीवन धारण नहीं कर सकता। लेकिन इसकी सुलभता ही हमें अनुभव करा देने में बाधक है। यह विषय श्रद्धा और अनुभव का है, तर्क का नहीं। एक बार अनुभव करने से पता लग सकता है। बहुत से ऐसे महापुरुष होगये हैं जिन्होंने इस विषय में अपना अनुभव हमारे सामने रख दिया है फिर भी हम अभागे उनकी अनुभूत सत्य वाणी का यथार्थ उपयोग नहीं करते। अगर समझ कर हम इसका यथार्थ उपयोग करें तो हमें इसका पता लग सकता है कि कहां तक यह बात सत्य है। जिस प्रकार किसी अनुभवी महापुरुष ने औषध की पहचान, प्रक्रिया और गुण बता दिये, उसका अनुपान भी बता दिया लेकिन जब तक हम उसको यथार्थ क्रिया से तैयार न करें तब तक उसके दिव्य गुण का कैसे अनुभव हो सकता है? हमारे पौराणिक इतिहासों से पता चलता है कि इस "हरिनाम" के ही प्रताप से कैसे कैसे तुच्छ प्राणी कितनी महानता को प्राप्त होगये। उदाहरण स्वरूप महर्षि बाल्मीकि, अजामिल, गणिका, शबरी भिलनी, गज, गीध, जटायु आदि अनेक होगये हैं जिनकी गणना करना भी कठिन है। इनके चरित्र तो प्रसिद्ध हैं ही। हाल के जमाने में भी गुसाईं, तुलसीदासजी, सूरदासजी, मीराबाई, कबीरजी, रैदासजी, सदनजी आदि अनेक हुये हैं

जिनकी महिमा वर्णन करना सूर्य को दीपक दिखाना है। अगर कोई इस विषय का अनुभव करना चाहे तो इन महानुभाव सन्तों के रचे हुये ग्रंथों को पढ़ कर उनके बताये हुये अनुभूत मार्गों का अवलम्बन कर सरलता से इसका अनुभव कर सकते हैं।

दान

[ले० श्रीमती सूरजदेवी]

क समय मनुष्य, देवता और राक्षस मिल कर अपने कल्याण का मार्ग पूछने के लिये भगवान् प्रजापति के पास गये, वहां जाकर उन्होंने प्रार्थना की "हे भगवन! हम तीनों को अल्प से अल्प शब्दों में उपदेश दीजिये और वह तीनों के लिये एक ही होना चाहिये। प्रजापति ने यह सुन कर और विचार कर तीन बार "द" "द" "द" कह दिया "द" को सुन कर सब विचारने लगे कि हमारी इच्छानुसार अल्प शब्द तथा एक ही शब्द में तीनों को उपदेश मिल गया है। देवताओं ने विचारा हम स्वार्थी बहुत होते हैं, हमारे अन्दर दमन की कमी है अतः प्रजापति, ने हमें "द" से दमन का उपदेश किया है। मनुष्यों ने विचारा हम लोभी बहुत होते हैं अतः हमें "द" से दान का उपदेश दिया है। दानवों ने विचारा कि हमारे अन्दर दया नहीं होती है, अतः हमें 'द' से दया का उपदेश दिया है। उन्होंने प्रजापति को अपने २ विचार बतला दिये। प्रजापति ने कहा सत्य है इसी में तुम्हारा कल्याण है। उपदेश ग्रहण करने के अनन्तर तीनों अपने २ लोकों में आगये। देवताओं ने तथा दानवों ने कितना उपदेश का मनन निदिध्यासन किया सो तो देव ही जानता है। परन्तु मनुष्यों ने तो उस उपदेश का कुछ विशेष आदर नहीं किया। किन्तु देवताओं ने यदि कुछ स्वार्थभाव त्यागा होगा तो वह मनुष्यों ने चट लपक लिया है। जो कुछ दान धर्म होते हैं वे स्वार्थ भाव को लिये हुये होते हैं"। शास्त्र में निष्काम धर्म ही अति श्रेष्ठ माना है। जो धर्म किसी फल की इच्छा से किया जाता है उसका फल तो मनुष्य की याचना के अनुसार होता है और जो धर्म निष्काम भाव से किया जाता है उसका फल ईश्वर मनुष्य के कल्याण को सोच कर देते हैं। पाठक गण! विचारिये मनुष्य की बुद्धि बड़ी है अथवा ईश्वर की, हमें ईश्वर की बुद्धि श्रेष्ठ, तथा प्रभु को अपना परम हितैषी जान, निष्काम कर्म करने चाहिये।

एक समय महाराज भोज की रानी लीलावती अपने राज्य की किसी कन्यापाठशाला का निरीक्षण करने गईं। वे केवल अक्षरों का ही निरीक्षण नहीं करती थीं किन्तु बुद्धि विचार की भी थाह ले लिया करती थीं। महारानी जी कन्याओं का विद्या अध्ययन तथा शिल्प कलादि की चातुरी देख कर बहुत प्रसन्न हुईं। उन्होंने उन कन्याओं को कुछ शिक्षा उपदेश भी दिया, जिसमें उनका विषय दान धर्म मुख्य था। उन्होंने कहा "प्यारी बच्चियो! हमारा मनुष्य जन्म इसलिये नहीं हुआ है कि हम स्वयं खायें, पीयें और आराम करें किन्तु हमें इस

दुनिया में आके अपने आराम से अधिक दूसरों के आराम का विचार करना चाहिये। भगवान् ने हमें जो सुन्दर देह तथा धनसम्पत्ति दी है उसका यह तात्पर्य नहीं कि सारा धन हम अपने ही आराम के लिये व्यय करें, नहीं कदापि नहीं। इसमें उनका हिस्सा अधिक समझना चाहिये जो दीन हैं, हीन हैं और असहित हैं! कन्याओ! भगवान् हम से तब ही प्रसन्न होंगे जब हम उनकी सृष्टि के दीन दुःखियों की यथा शक्ति सहायता करेंगी'। इस उपदेश को सुन कर एक कन्या ने महारानी जी से नम्रता पूर्वक पूछा कि, हे महारानी जी! मनुष्य को दान किस भान्ति का करना चाहिये इसके उत्तर में महारानी जी ने कहा कि मेरी प्यारी कन्याओ! मैं तुम्हें एक दृष्टान्त सुनाये देती हूं उससे तुम समझ जाओगी कि किस प्रकार का दान श्रेष्ठ है। उन्होंने कहा—

एक नगर में एक सेठ के चार पुत्र थे। वह जब मरने लगा तो उसने अपने चारों पुत्रों को समान धन सम्पत्ति बांट दी और कुछ धन उसने दान करने के लिये रख लिया। जब वह वृद्ध मरगया तो चारों ने उस धन के भी चार हिस्से किये और कहा कि हम चारों इसको दान में ही लगावेंगे इन चारों लड़कों के नाम यह थे १ नामचन्द २ अर्थचन्द ३ लोभचन्द और ४ ज्ञानचन्द। नामचन्द ने कूंये, बावड़ी आदि बनवाये जिससे उसका नाम सर्वत्र फैल जाय। अर्थचन्द ने ऐसों को दान दिया जिससे बदले में अपना कुछ भी प्रयोजन निकल आता। ज्ञानचन्द ने विचारा मैं तो अपने भाइयों की तरह दान न करूंगा यह दान श्रेष्ठ नहीं है अतः उसने जहां कहीं गरीब दुःखी देखे वहां दान दिया और अपने नाम के लिये सबसे मना कर देता। ज्ञानचन्द ने तो इस नियम के अनुसार दान दिया कि दायें हाथ से दान देवें तो बायें को भी खबर नहीं होनी चाहिये। अब रहे लोभचन्द जी उन्होंने विचारा कि ब्याज लगा २ कर पहिले खूब इकट्ठा करले, पीछे बहुतसा अपने भाइयों से अधिक दान करेंगे। ऐसा विचार कर उसने जमा करना आरम्भ कर दिया और अपने द्वार पर आये हुये भिखारियों को भी उसने कुछ नहीं दिया। जब इन सबका अन्त समय आया तो पहिले नामचन्द की बारी आई। मर कर यह यमपुर पहुंचे। यमराज ने पूछा कि तुमने क्या २ शुभ कर्म तथा दान किया है? नामचन्द ने अकड़ कर अपनी धर्मशाला, बावड़ी कूंये आदि सब दान कर्म सुना दिये। यमराज ने कहा "कि नहीं यहां इन धर्मों का कुछ नहीं मिलेगा उसका तो फल तुम्हें वहीं मिल गया, तुमने नाम की इच्छा लेकर यह सब किया था तुम्हारा नाम खूब हो रहा है। जाओ चौरासी के चक्कर में भटको, स्वर्ग में तुम्हें स्थान नहीं मिलेगा। फिर जब अर्थचन्द की बारी आई तो उससे भी यमराज ने यही प्रश्न किया। तब अर्थचन्द ने भी अपने दान की पोथी सुनादी परन्तु यमराज ने कहा नहीं वह दान तुम्हारा यहां नहीं आया तुमने तो जिसको दान किया था उसका बदला वहीं प्राप्त कर लिया था, ऐसों को ही दान दिया था कि जिससे कुछ न कुछ मतलब सिद्ध हो अतः तुम भी यहां नहीं रहने पाओगे। फिर लोभचन्द की बारी आई उससे भी वही प्रश्न यमराज ने किया कि तुम भी अपना दानादि शुभ कर्म बतलाओ, लोभचन्द ने कहा मैंने दान तो कुछ नहीं किया है हां दान के लिये जमा तो बहुत कर रक्खा है आप मुझे एक बार पनः चले जाने

दीजिये मैं सब दान कर आऊंगा। यमराज ने कहा 'नहीं' ऐसा कदापि नहीं हो सकता, लोभचन्द ने कितनी ही मिन्नतें की और कहा कि अधिक नहीं चार पांच मिनट के लिये ही एक बार छुट्टी दे दीजिये परन्तु ऐसा कब सम्भव था, बेचारा हाथ मलता रह गया, उसका न जग में यश हुआ न परलोक में गति दोनों तरफ से गया यथा-

"धोबी का कुत्ता घर का न घाट का"

फिर जब ज्ञानचन्दजी की बारी आई तो उससे भी यमराज ने वही प्रश्न किया जो औरों से किया था। ज्ञानचन्द ने नम्रता पूर्वक कहा कि "हे भगवन्! मनुष्य संसार के माया जाल में फंसा हुआ क्या शुभ कर्म कर सकता है? प्रकृति रूपी रज्जू से बन्धा हुआ वह क्या शुभ कर्मों के मैदान में आ सकता है? मर्त्य लोक से छूट कर हम आपके पास आये हैं आपही हमें हमारे कल्याण का उपदेश कीजिये आप हमारे पूज्य हैं, बड़े हैं, अतः मैं आप जैसे के पास आकर अब किसी छोटे स्थान में थोड़े ही जा सकता हूं। बड़ों के सहारे छोटे भी बड़े हो जाते हैं"। यमराज उसके ऐसे नम्रता युक्त तथा युक्ति संगत वचनों को सुन कर प्रसन्न हुआ और उसे वहां ही रख लिया। लड़कियो! बतलाओ तुम इनमें से कौन बनना पसन्द करती हो। सब कन्याओं ने एक स्वर से कहा कि हम ज्ञानचन्द बनना पसन्द करती हैं। महारानी ने कहा "पुत्रियो! आज से सर्वदा तुम दान के बदले में नाम तथा मतलब मत चाहना, बस तुम ज्ञानचंद बन सकती हो। जब कभी तुम्हें दान का अवसर प्राप्त हो तो यही दृष्टान्त स्मरण कर लेना। प्रतीत होता है कि महारानी के जब ऐसे विचार थे तब ही तो राजा भोज इतना दान किया करते थे कि एक२ श्लोक के लाख२ रुपये दे देते थे। राजा भोज बड़े ही दान शील राजा थे जब ही तो कालीदास ने उनके झूंठ मूठ मरण को सुनकर कहा था कि यदि पृथ्वी पर से भोज उठ गया तो धारा नगरी और सारे कवि गण अनाथ होजांयगे। प्यारी बहनो! क्या लीलावती जैसी निष्काम दान शील हम नहीं बन सकती हैं? अवश्य बन सकती हैं। केवल कुछ स्वार्थ की मात्रा घटानी पड़ेगी। इस दुनिया में आकर जिन्होंने कुछ देना नहीं सीखा वह मेदिनी पर मानो पाषाण रूप जन्मा है। किसी महात्मा ने कहा है:—

जब तक तेरी देह है देय देय कछु देय।
देह खेह होजायगी फिर कौन कहेगा देह॥

इस शरीर का नाम भी देह इसीलिये है कि देना चाहिये देना चाहिये। देय से देह कहलाता है। किसी २ का ऐसा स्वभाव होता है कि भिखारियों को देखते ही त्यौरी चढ़ा लेते हैं और झल्लाते हैं कि न जाने ये कमबख्त कहां से आगये! परन्तु विचार दृष्टि से देखा जाय तो मांगने वाले मांगते नहीं हैं किन्तु शिक्षा देते हैं यथा:—

याचकाः नैव याचन्ते भिक्षा द्वार गृहे गृहे।
दीयतां दीयतां चैव अदातुः फल मीदृशः।

भिक्षुक गृह के द्वारों पर जाकर याचना नहीं करते हैं किन्तु आदर्श युक्त शिक्षा देते हैं कि तुम दान देओ, दान देओ। दान न देने से हमारी यह गति हुई है। अतः हे दानी जना! दान देना चाहिये, दान देना चाहिये, ताकि तुम पर भी हमारी सी अवस्था न

आवे। दुनिया में यदि याचक न हों तो उदारता और दानशीलता मनुष्यों में कहां से आवे। हार जीत, देना लेना आदि कर्म तो तब ही हो सकते हैं जब पृथिवी पर निर्बल, बलवान्, धनवान् और गरीब सब ही हों अतः भिक्षुक जनों का कभी अनादर नहीं करना चाहिये। दान शक्ति तो मनुष्य की एक मुख्य शक्ति है इस शक्ति के बल से अनेकों ने इह लोक में सुयश तथा परलोक में परम पद पाया है।

अपूर्ण

परोक्ष गोवध के दायी कौन २ हैं ?

[ले० श्री० पं० गंगाप्रसादजी अग्निहोत्री जबलपुर]

नाति सिद्धिरकर्म्मणः

भारत के प्राचीन आर्य्य नेताओं ने जिस गवायुर्वेद की व्यापक शिक्षा की सहायता से भारतीय गौओं को माष्वी, शतौदना, द्रोणदुघा और पयस्विनी बना कर, उन्हें काम दुघा बनाया था, उस गवायुर्वेद की ही शिक्षाको भूल कर हम लोग अपने प्राणाधार गोधन को बहुत बड़ी संख्या में वध्य बनाते जाते हैं। अपने गोधन का अपरिपालन कर, हम उसे जिस भीषण संख्या में वध्य बनाते जाते हैं, उसी भयंकर संख्या में हमारे ही धनवान् परोक्ष रूप में उनका वध कराके, हमारे गोधन की संख्या को घटाते जाते हैं। हम लोग केवल मुख से ही 'गोभक्ति' और 'गोरक्षा' चिल्लाकर कर अपने पूर्वजों की नांई शास्त्र विहित रीति से गोपरिपालन करने लगें, तो न तो हमारे देहरी द्वार के पड़ोसी मुसलमान भाई ही विष तुल्य गो मांस के लालची बनें और न सरकार ही हमारे उपयोगी गोधन को फौजी लोगों को उदर पूर्ति के लिए काटने देवे। हम अपनी गौ को उचित परिपालन द्वारा यदि 'द्रोणदुघा'—प्रति दिन बत्तीस सेर दूध देने वाली—बना लेवें तो हमारे मुसलमान भाई और सरकारी फौजें—पेट भर अमृत तुल्य दूध और मक्खन खाने के पश्चात् हलाहल के समान गोमांस की इच्छुक कभी नहीं होंगी।

गोभक्त माता पिताओं की सन्तान होने पर भी जो जमींदार भाई किसानों की भलाईके नाम पर केवल व्याख्यान बाजी ही किया करते हैं और कागजी मोटरें दौड़ाया करते हैं। वे किसान भाइयों में अपनी गौवों को दुधार, और खेतों को अधिक उपज देने वाले उपायों का प्रचार करने में भी उतना धन खर्च किया करें जितना वे भिन्न २ प्रकारों की मेम्बरी को प्राप्त करने में व सभा समाजों के अधिवेशन करने में खर्च किया करते हैं, तो किसानों की ठोस भलाई उनके द्वारा हो सकती है। जो लोग किसानों में गोपरिपालन की शिक्षा को फैलाने से मुंह मोड़ कर, उनकी भलाई करने का थोथा अभिनय किया करते हैं, वे सचमुच ही परोक्ष गोवध के दायी और दोषी हैं। सौ पचास वर्षों से गोपरिपालन की लगातार उपेक्षा करने के कारण, इस समय जिस परिमाण

में खेती की उपज घट गई है, वा खेतों में खड़ी हुई फसल पाला तुषार को सह नहीं सकती, उनकी हानि से किसानों की एक दम रक्षा का स्वांग रचना ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार कोई अविवेकी जन, घर में आग लग जाने पर, कुंआ खोदना आरम्भ करे। इस परिस्थिति को भली भांति हृदयगंम कर अब किसानों के हितैषियों को चाहिए कि वे लोग किसानों में गो साहित्य का प्रचार करने में प्रतिमास कम से कम ५०) खर्च किया करें और इस प्रकार उनमें गोपरिपालन की यथोचित् शिक्षा को फैलावें। ऐसा करने से वे किसानों का ठोस हित करने का पुण्य प्राप्त कर सकेंगे और साथ ही अभी तक उनने परोक्ष गोवधका जो घोर पाप बटोरा है उससे भी मुक्त हो जायंगे।

इस समय जो धनवान् भारतवासी मिलों और फैक्टरियों का संचालन वा उनकी दलाली कर धनवान् बने हैं वे परोक्ष गोवध के लिए बहुत दोषी और दोषी हैं। उनकी मिलों और फैक्टरियों में जो चमड़ा और चर्बी खर्च की जाती है वह सब गोवध से ही प्राप्त होती है। इस प्रकार के पाप से कमाया हुवा धन उन्हें थोड़े दिन ही धनकुबेर रहने देगा। पश्चात् वह उन्हें अन्यायोपार्जित धनके परिणाम पर अवश्य ही पहुंचावेगी। इस अनिष्ट और अवाञ्छनीय पाप से आत्मरक्षा करने के लिए उन्हें यही उचित है कि वे अपनी कमाई के धन में से कम से कम एक सौ रुपये, प्रति मास, किसानों में गोपरिपालन की शिक्षा के प्रचार में खर्च करना बहुत शीघ्र आरम्भ कर देवें। ऐसा करने से उपयोगी गोधन की संख्या बढ़ेगी। साथ ही गोधन की प्राकृतिक मृत्यु से उन्हें इतना चमड़ा और चर्बी मिलेगी कि उनसे उनके कई कारखाने भली भांति चल सकेंगे। इस प्रकार वे परोक्ष गोवध के पापसे बच जायंगे

कल कारखानों में चमड़े और चर्बी के प्रयोग से जो धनोपार्जन होता है और उसके साथ परोक्ष गोवध का जो पाप संचित होता है, उस को अंगरेजी वा संस्कृत के शिक्षालयों के लिए थोड़ा सा धन देने से वा दातव्य अस्पतालों के लिए थोड़ा सा धन देनेसे उऋण कभी नहीं होसकता। इस वस्तु स्थिति को भली भान्ति हृदयंगम करके मिल मालिकों और एजेण्टों को चाहिए कि वे लोग मुक्त हस्त होकर बड़ी तत्परता के साथ गोपरिपालन की शिक्षा के प्रचार में धन लगाना आरम्भ कर देवें।

जो लोग मिलों में काते हुए सूत और बनाये हुए कपड़ों का रोजगार करके धन कुबेर बने हुए हैं, और जो लोग मिल के कपड़ों को काम में लाते हैं वे भी गोवध के परोक्ष पाप के पातकी अपने आप को बनाते जारहे हैं। इस में तिल भर भी सन्देह नहीं है। उनका यह परोक्ष पाप इतना प्रबल है कि किराये पर कराये हुवा गोपाल सहस्र नाम का वा विष्णु सहस्र नामका पाठ, उनकी रक्षा कदापि नहीं कर सकेगा। इस घोर पाप से आत्म रक्षा करने की उन्हें अणुमात्र भी इच्छा हो तो उचित है कि वे लोग अपने विभव विस्तर और सामर्थ्य के अनुसार, अपने पार पड़ोस के किसानों तथा ग्वालों में प्रति मास सस्ते गोसाहित्य का प्रचार कर उनमें सशास्त्र गोपरिपालन की शिक्षा का प्रचार निरन्तर करते रहा करें। यह काम उन्हें तब तक करते रहना होगा, जब तक हमारे अन्न दाता किसान भाई गोपरिपालन के तत्व और महत्व के ज्ञाता बन पाते हैं। जब वे उसके ज्ञाता बन जायंगे तब वे स्वयं उचित

रीति से गोपरिपालन कर भारत की खेती की उपज को बढ़ावेंगे और कल कारखाने के लिए निष्पाप सामग्री पहुंचाने लगेंगे।

जो लोग अपने विचारों की संकीर्णता और यथोचित कामों में धन खर्च करने की कृपणता आदि के कारण उक्त प्रकार परोक्ष रूप से गोवध के लिये दाई हैं। उन सब लोगों की सेवा में मेरी यह, कुछ कटु किन्तु सत्य प्रार्थना है कि वे लोग अपने २ बाल बच्चों और समूचे भारत के हितसे प्रेरित हो कर मेरे इस लेख पर एक बार गम्भीर भाव पूर्वक विचार करने की कृपा अवश्य करें। समय रहते किसी दोष को दूर करने का विचार और उद्योग करना ही सच्ची बुद्धिमानी है और यथार्थ पुरुषार्थ है। समय बीत जाने पर, कोरा पश्चाताप हा हाथ लगता है। उससे लाभ कुछ नहीं होता। तात्पर्य, वस्तुस्थिति को हृदयंगम कर के तदनुसार काम करने से ही सिद्धि होती है।

जो पत्र पत्रिका सम्पादक गण इस बात को जानते हैं कि अपालन के कारण गोवध बढ़ता जारहा है पर उसे मिटाने के लिए अपने पाठकों में गोपरिपालन की भावना को निरन्तर के आन्दोलन द्वारा पैदा नहीं करते, वे भी परोक्ष गोवध के दोषी हैं। अतः उन्हें चाहिए कि वे इस भारत नाशक पाप से—गोवध से—भारत की रक्षा करने के अभिप्राय से अपने अपने पत्रों में गोपरिपालन की शिक्षा की आवश्यकता की चर्चा निरन्तर करते रहा करें।

देखा

[ले० श्रीमदनगोपाल सिंहल]

जिनको वेदों को निराकार बताते देखा।
हमने जन हेत उसे देह बनाते देखा॥
जिसके पद पद्म सदा दाबती रहती पद्मा।
हमने बन नाई उसे पैर दबाते देखा॥
एक भ्रू भंग से जो विश्व का संहार करें।
आगे यवनेश उसे भागते जाते देखा॥
माया संसारको जिसकी है चलाती हरदम
पार्थ के रथ को उसे आप चलाते देखा॥
जिसकी शक्ति से हैं ब्रह्माण्ड करोड़ों ठहरे
उसको गिरवर को स्वयं नख पे उठाते देखा
भोज्य षटरस सभी मायासे हैं बनते जिसकी
दाने चावल के उसे प्रेम से खाते देखा॥
रास मंडलमेंकियाजिसने विजयमनसिजको
फेर मदनको उसे निज पुत्र बनाते देखा॥

बसन्त

बसंत आगया है परन्तु आज कल कितने ऐसे मनुष्य हैं जिनको इस बातका ज्ञान है कि इस ऋतु में क्या खाना चाहिए, क्या पहिनना चाहिए और किस प्रकार दिनचर्या रखनी चाहिए ?

अंगरेज़ी पढने वाले भाइयों को तो इस बात का भी ज्ञान नहीं होगा कि वसंत किस मास में आरम्भ होता है। प्रकृति के नियमों का अनुशीलन और अनुभव करके देश, काल की स्थिति को जान कर हमारे ऋषि मुनियों ने जिस ज्ञान का सञ्चय किया था उससे अनभिज्ञ आज हम बहुत पढ़े हुए होने पर भी अज्ञानियों के समान जीवन व्यतीत करते हैं और जिसका फल यह है कि हम क्षय की तरफ बड़े वेग से बढ़ते जारहे हैं। हमारा ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं है कारण हम व्यवहारिक मनुष्य नहीं रहे। न तो हम पश्चमी विज्ञान के स्वामी हैं और न ही हम प्राचीन ज्ञान को जानकर उसे धारण करने वाले हैं। व्यवहारिक जीवन न होने से हमारा ज्ञान उलटा है। ऐसा ज्ञान हमारे लिए लाभ दायक और कल्याणकारी नहीं है बल्कि यह तो हमारे दिमाग़ का भार है। इस मायावी ज्ञान से जिसको अज्ञान कहना उसकी यथार्थ व्याख्या है हम लोगों में इस अज्ञान से बहुत कमजोरियां आगई हैं और उनमें सब से बड़ी कमज़ोरी मिथ्या अहंकार की है। मिथ्या अहंकार के कारण हम यह जानने में भी असमर्थ हैं कि हम कहां खड़े हैं। जो हम से बहुत आगे हैं उनको हम समझते हैं कि वह हम से पीछे हैं। इस दोष के कारण हम संसार में से गुणों को ग्रहण करने में बहुत पीछे हैं। इसका स्पष्ट और बड़ा सरल उत्तर यह है कि हमारा जीवन प्राकृतिक जीवन नहीं। उसको दूसरी भांति यह भी कह सकते हैं कि हमारा जीवन ऋषियों और राजाओं की भान्ति नहीं है और प्राकृतिक जीवन न होने का कारण यह है कि हमको उस जीवन का ज्ञान नहीं है, जो ज्ञान हमारे घरों में माताओं, बहिनों और बुजर्गों आदि सब को था वह ज्ञान बन्द पुस्तकों में पड़ा है। यही कारण हमारे इतने दुःखों का मूल है, अन्यथा जीवन में दुःख की क्या बात है। प्यारे पाठको! ऋषि मुनियों के इस वैदिक ज्ञान को बारम्बार पढिए और यथा शक्ति उस पर चलने का प्रयत्न कीजिए, आपको काश्मीर की सैर और कुल्लू के सफ़र से जो स्वास्थ्य का लाभ प्राप्त हो सकता है उस से कहीं अधिक घर रहते हुए प्राप्त हो जावेगा। प्रथम तो वसन्त को भगवान् रूप देखो क्योंकि भगवान् स्वयं अपने मुख से फरमाते हैं कि:--

'ऋतुनां कुसुमाकरः'

ऋतुओं में वसन्त ऋतु मैं हूं। इस विचार की पुनरावृत्ति के लिए नित्य प्रति गीता के दशवें अध्याय का पाठ करो और जीवन शास्त्रानुसार धारण करो। भाव प्रकाश में लिखा है कि "वसन्त में वमन की औषधियों का सेवन, नाक में औषधियों का डालना, मधु के साथ हरड़ों का खाना, व्यायाम करना, चूर्ण से शरीर को मर्दना करना, कफ़ नाशक औषधियों के द्वारा कुल्ले करना गेहूं, अनेक प्रकार के चावल, मूंग, जौ और सांठी चावलों का खाना, चंदन, केशर, अगर का लेप करना, तथा जो पदार्थ रूक्ष, तीक्ष्ण गरम, और हलके हों उनका सेवन अत्यंत हितकारी है।

मीठी, खट्टी और चिकनी वस्तु, दही, दिन में सोना और जो कठिनता से पचै ऐसे पदार्थों का खाना, तथा ओस का सेवन--यह सब वसंत ऋतु में अवश्य त्याग देने चाहियें।

जो पानी उबाल कर अर्द्धावशिष्ट-जल कर आधा रह गया हो-ऐसा कूए, बावड़ी या झरने का पानी पीना चाहिये।

भजन

१

भोर भई बाजी मधुर मुरलिया,
कैसे धरे जिया धीर ॥ टेक ॥
मधुबन बाजी वृन्दावन बाजी. तट यमुना के तीर १
बैठ कदम्ब पर वंशी बजावे, स्थिर भयो यमुना नीर २
दर्द न जाने पीर पहिचाने, श्याम बड़ो बेपीर ३
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, आखिर जात अहीर ४

२

सांवरिया प्यारा बड़ो भरोसो थारो ॥टेक॥
सतयुग में पृथिवी के कारण, रूप बराह को धारो ॥१
खम्ब फाड़ नरसिंह होय प्रकटे, भक्त प्रहलाद उबारो॥
इन्द्र ने कोप कियो ब्रज ऊपर, नख पर गिरवर धारो
द्रुपद सुता को चीर बढ़ायो, दुष्ट दुशासन हारो ॥४
भारत में भंवरी का अण्डा, घण्टा तोड़ उबारो ॥५॥
कहै नरसीलो सुन सांवरिया, हुण्डी वेग सिकारो ॥६

३

शंकर मैं आधीन तुम्हारा ॥ टेक ॥
गोरे २ तन पै भस्म विराजे, और सोहे रुण्ड माला ।
बैल चढ़े शिव नाद बजावे, पार्वती का प्यारा ॥ १ ॥
सेवा कर भागीरथ लायो, बहे जटा बिच धारा ।
केकय पापी पार उतर गये, मेरा करो निस्तारा ॥२॥
आक धतूरा भोग लगत है त्रिप का करते अहारा ।
नील कण्ठ पर नाग विराजे ऐसे दीन दयाला ॥३॥
भोले नाथ मोपे कृपा कीजो, मैं हूं दास तुम्हारा ।
तानसेन हरि का गुण गावे. मेरा करो निस्तारा ॥४॥

४

आजारे वंशी वारा सांवरिया ॥टेक॥
बिन देखे नहीं चैन परत है, चंद्र सा मुखड़ा दिखला जारे
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे मुरली की टेर सुना जारे
दधि माखन घर में बहु मेरे दिल चाहे सोई खाजारे
श्याम कहे प्रभु तुमरे मिलन कूं पलर में चित चाहतारे

५

बंसियां बाजी रे मोहन की,
छुट गया शिव शंकर का ध्यान ॥टेक॥
बैल चढ़े शिव शंकर आये, गरुड़ चढे भगवान ।
कृष्ण चन्द्र की बाजी बांसुरी शंकर तोड़े तान ॥१॥
शिव के कानन मुद्रा विराजे, कृष्ण के कुंडल कान ।
कृष्णजी खाते माखन मिशरी, शिवजी फांके भांग ।२
कृष्णजी देते मोक्ष पदार्थ, शंकर देते ज्ञान ।
दास नारायण शरण आपकी दो भक्ति का दान ॥३॥

६

मन वृंदावन चाल बसोरे,
मान घटो चाहे लोग हंसोरे ॥ टेक ॥
गुरु बिन ज्ञान गंग बिन तीरथ,
एकादशी बिन व्रत किसोरे ।
बालू की भीत अटारी को चढबो,
ओछे की प्रीत कटारी को मरबो ॥ १ ॥
दीप बिन मन्दिर छत्र बिन राजा,
बिन पूतां परिवार किसोरे ॥२॥

मन ना मिल्यो वासे मिलबो किसोरे,
प्रीत करी वासे परदो किसोरे।
चन्द्र सखि भज बाल कृष्ण छवि,
नन्द को गोविन्द म्हारे हृदय बसोरे ॥३॥

होली

होरी खेलत हैं गिरधारी ॥ टेक ॥
मुरली चंग बजत डफ न्यारो, संग जुवती ब्रजनारी।
चन्दन केसर छिरकत मोहन, अपने हाथ बिहारी ॥
भरि भरि मूठ गुलाल लाल चहुं देत सबन पै डारी ॥
छैल छबीले नवल कान्ह संग, श्यामा मान पियारी ॥
गावत चारु धमार राग तंह, दै दै कल करतारी ॥
फाग जु खेलत रसिक सांवरो, बाढ्यो रस ब्रज भारी।
मीरां के प्रभु गिरधर मिले मन मोहन लाल बिहारी ॥

७

मेरो मन रामहिं राम रटैरे ॥ टेक ॥
राम नाम जपि लीजै प्यारे, कोटिक पाप कटेरे।
जनम२ के खत जु पुराने, नामहिं लेत फटेरे ॥
कनक कटोरे अमृत भरियो, पीवत कौन नटैरे ॥
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, तन मन ताहि पटैरे ॥

होली ६

श्याम संग गोपी खेलें होरो ॥ टेक ॥
झूम झूम कर आई सखियां कोई सांवर कोई गोरी।
रल मिल फाग परस्पर खेलें कर रही बारा जोरी ॥
नाचत कृष्ण किशोरी ॥ १ ॥
झपट २ के कान्हा दौड़ते राधे की बैय्यां मरोरी।
थाथिक थैय्या कूदत कन्हैया सखियां होगई बोरी।
प्रेम की लग रही डोरी ॥ २ ॥
वृंदावन की कुञ्ज गलिन में ऐसो फाग मचोरी।
लाल गुलाल अबीर उड़ावें भर२ कर सब झोरी ॥
आवै दौरी दौरी ॥ ३ ॥
बजत मृदंग ढोल डफ बाजत ऐसी साज सजोरी।
हीरानन्द भीज रहे रंग में रल मिल सबही रंगोरी ॥
अर्ज है यही मोरी ॥ ४ ॥

१०

जैसो रंग बरसे बरसाने सो रंग बैकुण्ठा में नाहिं।टेक
सुर तेतीसन की मत बोरी भग के चले स्वर्ग की पौरी
देख देख या ब्रज की होरी ब्रह्मा मन पछताय ॥ १ ॥
सकरी गली बनो पर्वत की दधी ले चली कुंवर कीरती की
आगे गाय चरें गिरधर की दीने सखा सिखाय ॥ २॥
दे जाओ दान कुंवर मोहन को जब छोड़ूं तिहारे गोहन को
मुरक सम्हारन लागी ग्वालिन मनमें अति सकुचाय॥
उनके संग सखी मदमाती उनके संग सखा उत्पाती।
घेर लई सखियां मदमाती आनन्द उर न समाय ॥४॥
जो या रसको सुने और जाने ब्रज युवतिन को देवी माने
जाके होय रोम रोम ज्ञाने तिनको जमपुर नाहिं ॥५॥

११

चरखा नहीं निगौड़ा चलता ॥ टेक ॥
पंच तत्व का बना है चरखा तीन गुनन में गलता ।१
टूटी माल तीन भये टुकड़े टेकुवा होगया टेढा।
मांजत मांजत हार गयी मैं धागा नहीं निकलता ॥२॥
चतुर बढैया दूर बसत है किसके घर दे आऊं।
ठोकत ठोकत हार गयी मैं तब भी नहीं संभलता ॥३
कहें कबीर सुनो भाई साधो जले बिना नहीं छूटै।
जलते समय में सूखा गोला धधक धधक कै जलता ॥

REGD. No. L. 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१.	भगवत्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहित	मूल्य	॥=)
२.	सारसंग्रह	,,	=)
३.	शब्दसंग्रह	,,	⅁॥
४.	भगवत् गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	,,	⅁
५.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	,,	⅁।
६.	वेदोपनिषत्	,,	⅁
७.	ज्ञानधर्मोपदेश	,,	⅁॥
८.	भाषा फक्किका प्रकाश	,,	॥)
९.	भक्ति योग संग्रह	,,	=॥
१०.	शब्द संग्रह गुटका	,,	।)
११.	शब्द सदाचार संग्रह	,,	⅁।

मिलने का पता:—

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

केवल टाइटिल पेज महारथी प्रेस, दिल्ली में छपा।